UNIVERSAL LIBRARY
OU_180124
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H85 | U [illegible] Accession No. G.H. 75[illegible]

Author [illegible] भारोती |

Title [illegible] 1950

This book should be returned on or before the date last marked below.

उज्ज्वल-प्रवचन

महासती उज्ज्वल कुमारीजी के राष्ट्रीय महापुरुषों के सम्बन्ध में किए गए प्रवचन

●

सम्पादक
रत्नकुमार जैन, रत्नेश
धर्मशास्त्री, साहित्य-रत्न

भारत जैन महामण्डल, वर्धा

बोरा ग्रन्थ-माला—१

जून १९५० : प्रथम संस्करण ३०००

❖

मूल्य दस आने

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

❖

प्रकाशक :

मूलचन्द्र बड़जाते

सहायक-मन्त्री

भारत जैन महामण्डल, वर्धा।

मुद्रक :

नारायणदास जाजू,

मुख्य प्रबंधक

श्रीकृष्ण प्रिं० वर्क्स वर्धा।

प्रकाशक की ओर से

महासती उज्ज्वलकुमारीजी के राष्ट्रीय प्रवचनों का यह संग्रह पाठकों के हाथों में देते हुए प्रसन्नता होती है। पाठक देखेंगे कि इन प्रवचनों में संकुचित साम्प्रदायिकता और धार्मिक असहिष्णुता को साध्वीजी ने किंचित् भी स्थान नहीं दिया है। हमारे देश में जिस विशाल मानव-भावना और धर्म-समन्वय और कर्म-शील नैतिकता की आवश्यकता है उसके दर्शन इन प्रवचनों में हो सकते हैं। सीमित समाज और साम्प्रदायिक वेशभूषा में रहकर भी उज्ज्वलकुमारीजी ने अपनी आन्तरिक उदार दृष्टि का परिचय दिया है।

भारत जैन महामण्डल केवल असाम्प्रदायिक ही नहीं, बल्कि एक सर्वोदयी संस्था है, जो सब धर्मों और सब सन्तों के प्रति आदर भाव रखती है। जहाँ कहीं अहिंसा और सचाई के दर्शन होते हैं वहाँ महामण्डल अपनत्व देखता है। इसी दृष्टिकोण की पूर्ति में सहायक स्वरूप ये प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं।

महासतीजी के धार्मिक प्रवचनों का एक संग्रह अन्यत्र प्रकाशित हो चुका है। उसके बाद महामण्डल के अध्यक्ष श्री राकाजी की मुलाकात होने पर चर्चा में उज्ज्वलकुमारीजी के सामने बात रखी गई थी कि कोई सर्वजनोपयोगी संग्रह हो तो महामण्डल को उसे प्रकाशित करने में प्रसन्नता होगी। भाई रत्नकुमारजी से पत्र-व्यवहार हुआ और उन्होंने यह संग्रह भेज देने की कृपा की।

यह संग्रह 'बोरा ग्रन्थ-माला' की ओर से प्रकाशित हो रहा है। इस पुस्तक की बिक्री से जो आय होगी उससे ऐसी ही कोई पुस्तक प्रकाशित की जा सकेगी।

पुस्तक की छपाई सफाई आदि में जिन मित्रों का सहयोग मिला है उन्हें नहीं भुलाया जा सकता। भाई श्री० जमनालालजी ने प्रूफ संशोधन तथा विषय को समझाने के लिए उप-शीर्षक देने आदि में काफी श्रम किया है। वे इतने निकट हैं कि उनका 'आभार' मानने में भी संकोच होता है। शुद्ध तथा शीघ्र मुद्रण में श्रीकृष्ण प्रेस का जो सहयोग मिला है, उसके लिए हम अत्यन्त आभारी हैं।

आशा है पाठक इस पुस्तक को अपनाएंगे और हमारे उत्साह को बढ़ावेंगे ताकि इसके दूसरे संग्रह भी प्रकाशित किए जा सकें।

तिलक चौक
वर्धा, २२ जून'५०

—मूलचन्द्र बड़जाते

आभार

यह पुस्तक 'बोरा ग्रन्थ-माला' की ओर से प्रकाशित हो रही है। इन्दौर का श्री० बोरा परिवार वृत्ति में धार्मिक है। महामण्डल और 'जैन-जगत' मासिक के प्रति शुरू से ही उसके विचार अनुकूल और उदार रहे हैं। यद्यपि वे स्थानकवासी समाज और सम्प्रदाय के हैं तथापि उनके दिल में सब सम्प्रदायों के प्रति सद्भावना और सौजन्य है। बोरा परिवार के प्रमुख श्री सूरजमल जी बोरा (फर्म सूरजमल हस्तीमल बोरा कपड़े के व्यापारी, तुकोजीराव क्लाथ मार्केट, इन्दौर) की प्रवृत्ति सदा ही धार्मिक कार्यों की ओर विशेष रही है। आज यद्यपि वे वृद्धावस्था के कारण अशक्त है और किसी तरह की इच्छा प्रकट करने में असमर्थ हैं, तथापि अपने पिताजी की भावना का ख़याल कर श्री पुखराजजी ने साहित्य प्रकाशन को उपयुक्त समझ कर महामण्डल की ओर से 'बोरा ग्रन्थ-माला' शुरू करने की इच्छा व्यक्त की। महामंडल उनके इस विचार का आदर और अभिनन्दन करता है।

यह प्रसन्नता की बात है कि श्री० सूरजमलजी के दोनों पुत्र श्री० हस्तीमलजी और श्री० पुखराजजी व्यापार करते हुए धार्मिक रुचि रखते हैं और यथाशक्ति धर्म तथा सेवा कार्य में प्रवृत्त रहते हैं।

हमारी अभिलाषा है कि जिस सद्भावना से यह ग्रन्थ-माला शुरू हुई है उसमें से अच्छी-अच्छी सर्वजनोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हों और बोरा-परिवार को समाधान हो कि उनकी सद्भावना सार्थक हो रही है और उनके दान का सदुपयोग हो रहा है।

सम्पादकीय

महासती श्री उज्ज्वलकुमारीजी जैन समाज की एक विदुषी साध्वी और आदर्श विचारिका हैं। उनके प्रवचनों की मानव-हृदय पर जो छाप पड़ती है, वह पढने और सुनने वालों से छुपी हुई बात नहीं है। गत वर्ष 'उज्ज्वल वाणी' के नाम से सतीजी के प्रवचनों का सर्व प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था, और इस वर्ष उज्ज्वल-प्रवचन के नाम से उनका यह एक और नवीन प्रकाशन हो रहा है। उज्ज्वल वाणी में धार्मिक प्रवचनों का संकलन था। परन्तु इस संग्रह में उनके राष्ट्रीय प्रवचनों की अधिकता है, जो कि किन्हीं खास मौकों पर सार्वजनिक समारंभों में किये गये हैं, जैसा कि आप अनुभव करेंगे। इन प्रवचनों में कहीं भी साम्प्रदायिकता की बू नजर नहीं आयगी। महात्मा बुद्ध, विवेकानंद, टैगोर, तिलक और गांधी जैसे महापुरुषों पर एक जैन साध्वी का अपने वेश में रह कर कहना कुछ आसान नहीं है। लेकिन यह पढने वाले स्पष्ट जान सकेंगे कि इस दिशा में भी सतीजी का ज्ञान कितना गहन है! और वे किस हद तक अपनी बात को कहने में समर्थ हैं। साम्प्रदायिक बंधनों में बंधे हुए होने पर भी उनका मानस बड़ा सुलझा हुआ है। विषय प्रतिपादन की उनकी शैली बड़ी अनूठी है।

श्री० रिषभदासजी राका, अध्यक्ष भारत जैन महामंडल, वर्धा का यदि प्रेम-पूर्ण आग्रह न होता तो संभव है यह पुस्तक अभी पाठकों के हाथों में न पहुँच पाती। अतः यहाँ मैं उनका आभार मान कर, अगर पाठकों ने इन प्रवचनों को पढने का आग्रह रखा तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगा।

'जैन प्रकाश' कार्यालय
पायधुनी, बम्बई ३
ता० १:६:५०

—रतनकुमार जैन 'रत्नेश'

अनुक्रम

१. भगवान् महावीर स्वामी
२. बुद्धदेव
३. मानवता प्रेमी बुद्ध और बापू
४. पुण्य-श्लोक गांधीजी
५. स्वामी विवेकानन्द
६. तिलक श्रद्धांजलि
७. विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर
८. महात्मा गांधीजी
९. महा-मानव का महा-प्रयाण
१०. यन्त्र-युग और गृहोद्योग
११. महात्मा गांधी और जिन्ना

: १ :

भगवान् महावीर स्वामी

पवित्र देश बिहार :

आज से ढाई हजार वर्ष पहले भ० महावीर इसी भारत-भूमि पर जन्मे थे। उनका जन्म बिहार में हुआ था। जन्मे वे बिहार में और बिहार में ही सर्व प्रथम उन्होंने धर्म-प्रचार भी किया। इन्हींके समकालीन म० बुद्ध भी एक महान् धर्म-प्रचारक थे। उन्होंने भी बिहार में ही विचरण किया था। आज के जमाने के महान् सन्त-पुरुष महात्मा गांधीजी ने भी अपने सत्याग्रह की शुरूआत बिहार से ही की थी। इन तीनों महापुरुषों के कार्यों की शुरूआत बिहार से होने के कारण ही बिहार एक पवित्र देश कहा जाता है।

वर्णों की दशा :

भ० महावीर के पिता राजा सिद्धार्थ थे और मामा था राजा चेटक। चेटक का तत्कालीन गण राज्यों पर काफी प्रभाव था। भगवान् ने ३० वर्ष की अवस्था में घर छोड़ा और साधु-दीक्षा ग्रहण की। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की दशा बहुत खराब थी। ब्राह्मण लोलुपी हो गये थे, क्षत्रिय युद्ध-प्रिय और विलासी बन गये थे, और वैश्य स्वार्थी। शूद्रों की तो दशा ही विचित्र थी। वे तो पशुओं से भी बदतर समझे जाते थे। ऐसी विषम स्थिति को सुधारने के लिये भगवान् ने मुनि-दीक्षा ली और दुनिया को इस अशान्ति से मुक्त करने का उपाय सोचा। इसके लिये उन्होंने साढ़े बारह वर्ष तक मौन तपस्या की और उसके बाद उन्हें जो उपाय सूझा उसका उपदेश करते हुए उन्होंने अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांत का सन्देश सारी दुनिया को दिया।

तीन 'द'–कार और 'अ'–कार :

पुराणों में एक कथा आती है। एक बार देव, दानव और मानवों ने मिलकर ब्रह्माजी को खुश करने के लिये तपश्चर्या की। ब्रह्माजी समाधिस्थ थे। कई दिनों बाद जब उन्होंने अपने नेत्र खोले तो सामने देवों को खड़ा पाया उन्हें देखकर ब्रह्माजी ने 'द' शब्द का उच्चारण किया और समाधिस्थ हो गये। देवों ने समझा हम विलासी हैं, भोगी हैं, अतः ब्रह्माजी ने हमें 'द' से इन्द्रिय दमन करने का उपदेश दिया है। इसके बाद दानव आये। उनको देखकर भी ब्रह्माजी ने 'द' कहा और अपने नेत्र बन्द कर लिये। दानव क्रूर थे अतः उन्होने समझा, हमें ब्रह्माजी ने 'द' से दया का उपदेश दिया है। अन्त में जब मानव आये तो उनको भी ब्रम्हाजी ने 'द' ही कहा और पुनः समाधिस्थ हो गये। मनुष्यों ने सोचा हम कृपण हैं अतः ब्रह्माजी ने हमें 'द' से दान का उपदेश दिया है। इस कथा में जैसे ब्रह्माजी ने तीन 'द' कह कर सबको शान्ति का मार्ग बताया वैसे ही भ० महावीर ने भी अशान्त दुनिया को शान्ति का मार्ग बताते हुए तीन 'अ' सुनाये, जिनका अर्थ है अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त।

मर्त्य-लोक को स्वर्ग बनाना हो और शाश्वत शाति प्राप्त करना हो तो वह इन तीनों सिद्धान्तों से प्राप्त की जा सकती है।

प्रज्ञा और अहिंसा का समन्वय :

दूसरे प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य में 'प्रज्ञा' की विशिष्टता है। अपने ज्ञान में उत्तरोत्तर वृद्धि करना प्रज्ञा है। मानव अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकता है, दूसरे प्राणी नहीं कर सकते। ५०० वर्ष पहले की तरह ही अब भी हाथी झुंड बनाकर रहते हैं, पक्षी भी ५०० वर्ष पहले की तरह अब भी अपना घर बनाते हैं और उनमें रहते हैं। उनमें कोई परिवर्तन होता हो या हुआ हो ऐसा नहीं लगता। परन्तु मनुष्य की यह बात

नहीं है। उसकी प्रज्ञा का निरन्तर विकास होता रहता है। लेकिन यह याद रखने की बात है कि यदि इस प्रज्ञा में अहिंसा का साथ न रहा तो यह तारक के बदले नाशक हो जाती है। आज विज्ञान ने तरक्की की है और उसने अणुबम भी खोज निकाला, परन्तु अहिंसा को साथ न रखने से वह तारक के बदले नाशक बन गया है। यूरोप की गोरी जातियों ने क्या किया है? अपनी प्रज्ञा के बल पर उन्होंने दूसरे देशों को खूब लूटा-खसोटा और उनका शोषण कर अपनी स्वार्थ-पूर्ति ही तो की है। अंग्रेजों ने भारत के साथ यही तो किया है। इस तरह उनकी प्रज्ञा तो बढ़ी, पर उसके साथ अहिंसा न बढ़ी इसलिये परिणाम भी खराब ही हुआ। प्रज्ञा के साथ साथ अहिंसा का बढना भी अनिवार्य है। इसीलिये भगवान् ने साढ़े बारह वर्ष बाद जब अपना मौन छोड़ा तब सर्वप्रथम उन्होंने यही कहा :

'मा हणो'—किसी को न मारो।'

अगर तुम किसी को मारोगे तो तुम्हें भी मरना पड़ेगा। अगर तुम किसी को छेदोगे तो तुम्हें भी छेदाना होगा और अगर तुम किसी को भेदोगे तो याद रखो तुम्हें भी भेदाना पड़ेगा। म० बुद्ध ने भी यही कहा है :

नहि वेरेन वेराणि सम्मन्तीध कदाचन।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो।

वैर से वैर का कभी भी अन्त नहीं आ सकता। इस युग के महान् सन्त-पुरुष और भारत के राष्ट्र पिता ने भी यही कहा है कि :

'तुम्हें मारने को आने वाले को यदि तुम मारोगे तो उसका हितैषी तुम्हें मारने को दौड़ेगा, इससे तुम्हारा मरण भी सुनिश्चित है। इस तरह जब तुमको मरना ही है तब इस मरने से तो अच्छा है कि तुम बिना मारे ही मरने को तैयार रहो।'

इस तरह जो सन्देश भगवान् ने २५०० वर्ष पहले सुनाया था, वही हमें गांधीजी ने भी सुनाया।

सच्चा सुख अहिंसा में है :

प्राणी मात्र सुख चाहता है, दुख कोई नहीं चाहता। जरा-सी आपत्ति आते ही मनुष्य भगवान् को याद करने लगता है। इसका अर्थ यही है कि हम दुख नहीं चाहते। लेकिन जिसे हम चाहते हैं वह सुख क्षणिक नहीं होना चाहिये। दूसरों के दुःख से मिलनेवाला सुख भी हमें नहीं चाहिये। क्योंकि ऐसा सुख भी सुख नहीं है। सब सबको दुख देकर सुख प्राप्त करें तो परिणाम में कोई सुखी नहीं हो सकेगा। इससे तो सब अपना दुख ही बढ़ावेंगे। हम एक को दुखी कर सुख चाहते हैं तो दूसरा हमें दुखी कर सुख प्राप्त करता है, अतः दुख ही बढ़ता है, सुख नहीं। अतः इस शाश्वत सुख का सच्चा मार्ग भगवान् ने साढ़ेबारह वर्षों तक जंगलों में रह कर और अनार्य देशों में भ्रमण कर खोजा और उन्हें जो उपाय मिला उसका उपदेश देते हुए उन्होंने कहा—'सच्चा सुख अगर कहीं है तो वह अहिंसा में है, सब से प्रेम करने में है।' इसका मूल-सूत्र बताते हुए उन्होंने कहा—'जीओ और जीने दो।' एक तरफ यह बात भगवान् ने हमारे सामने रखी और दूसरी तरफ 'जीवो जीवस्य जीवनम्' की बात भी सुनाई दी। यानी एक जीव दूसरे जीव के आधार के बिना जी ही नहीं सकता। यदि अहिंसा ही सच्चा मार्ग है तो एक का जीवन दूसरे के जीवन का आधार बनता है इसमें अहिंसा कैसे रहती है? यह प्रश्न लोगों के दिलों में उठना स्वाभाविक ही है। इसी प्रश्न को एक अंग्रेज लेखक ने अपनी भाषा में Leaving is Killing—जीना मारना है—कहा है। इस प्रश्न के उत्तर में हमारे तत्त्वचिन्तकों ने कहा है कि 'जीना यानी मारना' यह एक सत्य हकीकत

मात्र है, पर यह मानव का धर्म नहीं है। मानव का धर्म तो यही है कि वह कम-से-कम हिंसा करके अधिक-से-अधिक अहिंसा का ही पालन करे। इसी बात को अंग्रेजी में भी कहा गया है कि Killing the least is leaving the best —कम-से-कम हिंसा करते हुए अहिंसा का अधिकाधिक पालन करना ही जीवन का सर्वोत्तम सार है। यही बात भगवान् ने भी अपने साढ़े बारह वर्ष के लम्बे मौन को खोलते समय कही थी—'मा हणो मा हणो' जिसको वेदों में भी 'मा हिंस्यात् सर्वे भूतानि' कहकर समझाया गया है।

संयम :

मनुष्य के हृदय में शुभ और अशुभ दोनों तरह की भावनाएँ रहती हैं। उसके दिल के एक कोने में प्रेम, वात्सल्य, क्षमा, सन्तोष और सहृदयता रहती है और दूसरे कोने में काम, क्रोध, अहंकार, और लोभ जन्य वासनाएँ रहती हैं। जब तक इन वासनाओं पर संयम नहीं किया जाता तब तक अहिंसा का पालन नहीं किया जा सकता। आज विश्व के महान् युद्धों के मूल में लोभ ही तो है! लोभ पर संयम नहीं है इसीसे युद्ध होते हैं और मनुष्य मनुष्य को मारते हैं। इसलिये भगवान् ने अहिंसा का उपदेश देते हुए कहा कि अगर तुम्हें अहिंसा को अपने जीवन में उतारना है तो संयम और तप का पालन करो। तप और संयम अहिंसा के दो पाँव हैं जिनके बिना अहिंसा चल नहीं सकती। संयम का अर्थ केवल भगवा या सफेद वस्त्र पहन लेना ही नहीं, पर अपनी वासनाओं का दमन करना है।

तप :

अहिंसा के आराधक को अपनी वासनाओं का दमन करना ही होगा। अहिंसा का दूसरा पाँव है तप। उपवास या व्रत करना मात्र ही तप नहीं

है, पर अपने स्वार्थ की बलि देना भी तप है। कल्पना कीजिये एक व्यापारी है, जो बड़ा नीतिमान् है और सादगी से रहता है। व्यापार में अनीति करना उसे नहीं सुहाता। उसने किसी दूसरे व्यापारी से एक चीज का सौदा किया। सौदा करते ही उस चीज के दाम पाँच गुने बढ़ गये। अब देने वाला अगर सौदेके भाव में वह चीज दे तो उसकी घर गिरस्ती ही बिगड़ जाय, बाल-बच्चे भूखों मरने लग जायँ और बेचारे का दीवाला ही निकल जाय। तब नीतिमान् व्यापारी सोचता है कि ऐसी स्थिति में मेरा क्या कर्तव्य है ? इसकी स्थिति तो मालोमाल हो जाने जैसी है, पर उसकी अन्तरात्मा बोलती है– अगर मैं ऐसा करूँगा तो उसके बाल-बच्चे दुखी, अनाथ और कंगाल हो जायंगे। अतः वह उस व्यापारी के पास गया और बोला "मैं भाई, अपना सौदा रद्द करता हूँ।" यही भावना अहिंसा है। अपने लोभ पर विजय पाना संयम है और स्वार्थ का त्याग करना तप है। जब तक हममें इस प्रकार का संयम और तप न हो तब तक हमारी अहिंसा अपूर्ण ही रहेगी, वह पूर्ण नहीं कही जा सकेगी। भगवान् के इसी अहिंसा तत्त्व को हमारे राष्ट्र-पिता गांधीजी ने भी अपनाया था। उन्होंने अपनाया ही नहीं, अपने जीवन में ताने-बाने की तरह बुन कर भी दिखा दिया था।

बापू की अहिंसा भी व्यापक थी :

कुछ लोग कहते हैं कि महात्माजी की अहिंसा तो मानव तक ही सीमित थी। लेकिन ऐसा समझना ठीक नहीं है। जो ऐसा कहते हैं वे अभी गांधीजी को पूरा समझे नहीं हैं। गांधीजी के जीवन में ऐसे कई प्रसंग मिलते हैं, जिनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनकी व्यक्तिगत अहिंसा मानव तक ही सीमित नहीं थी बल्कि इससे भी आगे और बहुत आगे सूक्ष्म जीवों तक थी, जैसा कि हम उनके-दो-एक जीवन प्रसंगों से भलीभांति जान सकेंगे।

महात्माजी जब यरवडा जेल में थे तब काका साहब भी उनके साथ थे। सरदार वल्लभभाई पटेल भी उसी जेल में थे, पर अलग कमरे में थे। एक दिन सरदार ने अपने जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट के साथ एक चिट्ठी लिखकर महात्माजी के पास भेजी। उसमें लिखा था 'मेरे पास पूणियाँ नहीं रही हैं, भेजियेगा।' महात्माजी के पास भी पूणियाँ नहीं थीं अतः उन्होंने काका साहब से कहा—'मेरे पास पूणियाँ नहीं बची हैं तुम अपनी पूणियाँ सरदार को दे दो।' काका साहब ने कहा—'मुझे पूणियाँ बनाना नहीं आता, जब मेरी पूणियाँ समाप्त हो जायंगी तब मैं कहाँ से लाऊँगा? मेरे पास इतनी पूणियाँ नहीं है कि मैं सरदार को दे सकूं।'

महात्माजी ने कहा: 'तुम फिकर मत करो, मैं तुम्हें पूणियाँ बनाना सिखा दूँगा, लेकिन तुम अभी अपनी पूणियाँ सरदार को दे दो। वे पूणियाँ मँगा रहे हैं।' काका साहब ने अपनी पूणियाँ सरदार के पास भिजवा दीं और लगे पूणियाँ बनाने। बरसात के दिन थे अतः धनुआ रुई पींजने में बराबर काम नहीं दे रहा था। महात्माजी ने कहा—धनुआ की तांत पर जरा नीम के पत्ते रगड़ोगे तो यह बराबर काम देगा। सामने ही नीम का पेड़ था। काका साहब उठे और झट दस-बीस पत्ते तोड़ कर ले आये। लेकिन महात्माजी ने जब इतने पत्ते देखे तो काका साहब से कहा 'तुम्हें तो दो पत्तों की ही जरूरत थी; फिर इतने सारे पत्ते क्यों तोड़ लाये? इतने पत्ते तोड़ कर तो तुमने उस नीम का अपराध किया है।''

एक दूसरा प्रसंग और सुनिये। काका साहब ने महात्माजी को कूचा बना कर नीम का एक दातुन दिया। गांधीजी ने दातुन किया और फिर वह दातुन देते हुए काका से कहा—"इस दातुन का कूचा तोड़ कर रख लो और कल फिर मुझे यही दातुन देना।" काका साहब ने कहा—"आप ऐसा क्यों करते हैं? नीम के पेड़ तो यहाँ बहुत हैं।"

महात्माजी ने कहा—"जब तक यह दातुन चले तब तक उसका उपयोग न करना उस पेड़ का अपराध करना है।" इससे यह भलीभाँति जाना जा सकता है कि महात्माजी की व्यक्तिगत अहिंसा मानव-मर्यादित ही नहीं, वह सूक्ष्म जीवों तक भी व्याप्त थी।

गीता और अहिंसा :

एक बार गांधीजी से मिलना हुआ था तब पूछा था कि गीता में तो श्रीकृष्ण ने युद्ध का विधान किया है, तब फिर अहिंसा क्यों कही गई है? इसका उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा था—"गीता के अन्त में तो अहिंसा का ही विधान किया गया है। हिंसा से जो सिद्धि मिलती है वह ऊपरी होती है—दिखावटी होती है। सच्ची सिद्धि तो अहिंसा से ही प्राप्त की जा सकती है।"

आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व जो बात भगवान् ने कही थी वह आज भी उतनी ही उपयोगी है, यह साफ ज़ाहिर है।

परिग्रह पाप का मूल है :

दूसरी बात उन्होंने अपरिग्रह की कही। अहिंसा या सत्य तो पर्यायवाची शब्द हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। परिग्रह हिंसा से ही बढ़ता है। उसके मूल में अहिंसा नहीं होती। कई मनुष्य यह कहते हैं कि हम न्याय और प्रामाणिकता से पैसा इकट्ठा करते हैं, इसमें बुरा क्या करते हैं? लेकिन वे यह नहीं जानते हैं कि भगवान् ने तो साफ कहा है कि परिग्रह—संग्रह रखना ही पाप है। फिर चाहे वह न्याय से किया गया हो या नीति से किया गया हो। परिग्रह में सिवा पाप के और कुछ होता ही नहीं। क्योंकि पाप का मूल ही परिग्रह है।

परिग्रही धार्मिक नहीं होता :

बाईबिल में एक उदाहरण है। म० ईशु के पास एक धनवान युवक आया और बोला: 'मुझे कल्याण का मार्ग बताइये।' ईशु ने कहा: 'तू ईश्वर

की आज्ञा का पालन कर।' युवक ने पूछा : 'ईश्वर-आज्ञा क्या है ?' ईशु ने कहा : 'तू अपने पड़ौसी के साथ हमदर्दी का व्यवहार कर। सब से प्रेम कर।' युवक ने कहा : 'यह तो मैं करता ही हूँ।' तब ईशु ने कहा : 'तू अपना सारा धन गरीबों में बांट दे।" यह सुन कर वह युवक चला गया। भला धनवानों को यह बात कैसे अच्छी लग सकती है ! उस युवक को भी अच्छी न लगी। तब ईशु ने अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए कहा—'सूई की नोंक में से ऊंट का निकल जाना आसान है, पर धनवानों का स्वर्ग में जाना आसान नहीं है। भगवान् ने भी यही कहा है कि जब तक मानव परिग्रही रहता है तब तक वह धर्म का पालन नहीं कर सकता। वर्तमान् युद्धों के मूल में यही परिग्रह वृत्ति है। इसलिये भ० महावीर ने अहिंसा के साथ अपरिग्रह का सन्देश दिया था। यहाँ यह भी समझ लेना जरूरी है कि सम्पत्ति जैसे परिग्रह है वैसे ही साम्प्रदायिकता भी एक भयंकर परिग्रह है। परिग्रह से जैसे कई अनर्थ हुए हैं वैसे ही साम्प्रदायिकता ने भी भयंकर अनर्थ किये हैं। हमारे देश में कौमी साम्प्रदायिकता ने क्या नहीं किया ? उसने हमारे राष्ट्रपिता को भी हमसे छीन लिया। समझ लेना चाहिये कि मताग्रह भी ऐसा ही पाप है। इसी के साथ साथ एक और नया परिग्रह राष्ट्रीयता का पैदा हो गया है। यह सुधरे हुए लोगों का है। यह भी हमारा आदर्श नहीं होना चाहिये। हमारा आदर्श तो विश्वबंधुत्व होना चाहिये। Nationalism नहीं Universalism होना चाहिये। यही बात भगवान् ने अपने अपरिग्रह नामक दूसरे सिद्धान्त में कही है।

अनेकान्त :

तीसरी बात जो उन्होंने कही, वह है अनेकान्त। दुनिया जिसे स्याद्वाद के रूप में भी जानती है। हर मनुष्य की अपनी-अपनी विशिष्ट

दृष्टि होती है। भ० बुद्ध में मध्यम मार्ग की दृष्टि है। शंकराचार्य में अद्वैतवाद की और भ० महावीर मे अनेकान्त की दृष्टि थी। इसका अर्थ यह है कि एक ही सत्य को समझने के अलग अलग कई दृष्टिकोण होते हैं। एक ही बात को एक पूर्णदर्शी पुरुष अपनी तरह जानता है और उसी को अपूर्ण पुरुष दूसरे रूप में देखता है। दोनों सत्य देखते हैं पर अलग अलग देखते हैं। इसको समझने के लिये भगवान ने अनेकान्त की दृष्टि जनता को दी, जिसका संक्षिप्त अर्थ 'ही' नहीं 'भी' है। यानी अपना ही आग्रह न रखते हुए दूसरे की मान्यता को भी स्वीकार करना है। जिसको आज की परिभाषा में सर्वधर्म समभाव कह सकते हैं। अनेक धर्मों को अपने में मिला लेना अनेकान्त है और इसी का नाम महात्माजी ने सर्वधर्म समभाव रखा है। अनेकान्त यानी अनेक धर्म। किसी भी धर्म का खंडन करना अपने ही धर्म का खंडन करने जैसा है, अतः अनेकान्ती कभी किसी धर्म का खंडन नहीं कर सकता। अनेकान्त पाप का खंडन कर सकता है, सत्य का नहीं। फिर चाहे वह पूर्ण हो या अपूर्ण पर उस सत्य का खंडन न करना ही अनेकान्त है। और यही सर्वधर्म-समभाव भी है।

इस प्रकार भ० महावीर ने अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त का क्रमशः अशान्ति, असयम और विचार-विग्रहता को दूर करने के लिये जो अमर सन्देश दिया है उसे यदि कोई आज भी अपने जीवन में उतारे तो मानव समुदाय का कल्याण हो सकता है।

महावीर जयंती
१९४९

[वीर-जयंती पर हंसराज मोरारजी हाईस्कूल, अंधेरी मे दिया गया प्रवचन]

: २ :

बुद्धदेव

जयन्ती का अर्थ :

आज का विजयादशमी का पर्व बुद्धदेव का जन्म-दिवस है। दुनिया में अनेकों मनुष्य जन्म लेते और मरते हैं, पर हम सभी की जयंतियाँ नहीं मनाते। जयंतियाँ उन्हीं की मनाई जाती हैं, जिनकी ज्योति से हमारे हृदयों में भी प्रकाश उत्पन्न होता है। जयंती मनाने का अर्थ है : उन महापुरुषों की दी हुई पूंजी का वर्ष के अन्त में हिसाब करना, लाभ-हानि का मान निकालना।

महान् धर्म प्रवर्तक बुद्ध :

भगवान् बुद्ध एक महान् धर्म प्रवर्तक थे। उनके धर्म का प्रसार दूर देशों मे भी हुआ। आज भी लाखों बर्मी, लंकाई, जापानी तथा चीनी बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं।

धर्म मनुष्य के जीवन का एक उत्तम अंग है, इसलिये धर्म-प्रवर्तक तथा धर्म-प्रचारक मानव-समाज की उत्तमोत्तम और सर्वश्रेष्ठ सेवा करता है। बुद्ध को माननेवालों की संख्या अधिक है, लेकिन बुद्ध के इस दिग्विजय में या धर्म-चक्र-प्रवर्तन में कहीं भी बलात्कार की गंध नहीं है। इस्लाम तथा ईसाई धर्म के नाम पर खून की नदियाँ बही हैं, पर बौद्ध धर्म के नाम पर रक्त का एक बूंद भी नहीं गिरा है।

दस पारमिताओं की साधना :

बुद्ध ने अपने पूर्व-जन्मों में बुद्ध-पद के योग्य बनाने वाली दान, शील, नैष्कर्म्य, प्रज्ञा, वीर्य, शांति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री और उपेक्षा इन

दस पारमिताओं को सिद्ध कर आज से २५०० वर्ष पूर्व कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन की महारानी मायावती की कोख में जन्म लिया था और उनका नाम सिद्धार्थ-कुमार रखा गया था।

वृद्ध पुरुष का दर्शन :

यौवनावस्था प्राप्त होने पर कुमार सिद्धार्थ का विवाह एक रूपवती और गुणवती राजकन्या यशोधरा के साथ कर दिया गया। एक बार कुमार सिद्धार्थ राजउद्यान में जा रहे थे। वहाँ उन्होंने एक वृद्ध पुरुष को देखा, जिसकी कमर झुकी हुई थी, सिरपर सफेद बाल आ गये थे, मुँह में दाँत नहीं थे, देखने तथा सुनने की शक्ति क्षीण हो गई थी और हाथ-पाँव काँप रहे थे। ऐसे वृद्ध पुरुष को देखकर उन्हें विचार आया कि एक दिन मैं भी ऐसी स्थिति में आजाऊँगा, इसलिये अभी से उसके लिये सावधान हो जाना चाहिये।

रोगी और मृत का दर्शन :

कुछ दिनों बाद उन्होंने एक बीमार मनुष्य को देखा, जो रोग की असह्य पीड़ा से कराह रहा था। उसे देख कर उन्हें विचार आया कि मेरा शरीर भी व्याधियों का घर है, एक न एक दिन मेरा भी यही हाल होगा! अन्त में जब उन्होंने एक मृत देह को देखा तो सोचा: देह नश्वर है, अतः मेरा भी एक दिन इसी तरह अन्त होगा। ऐसा विचारते-विचारते उनका हृदय ग्लानि से भर आया और सबके प्रति उदासीन हो गए। उद्यान में जाना छोड़कर वे पुनः राजमहल में लौट आये। परन्तु राजमहल में भी उन्हें चैन नहीं आया। रंगमहल का रंग भी उनके वैराग्य भाव ने फीका कर दिया था। जरा, रोग और मृत्यु उनकी नजरों के सामने चित्र-पट की तरह घूम रहे थे। और इनके लिये उनके हृदय में भारी उथल-

हुलचल मच रही थी। दिन में खाना-पीना छूट गया और रात में नींद नहीं आती थी। इस तरह कितने ही दिन-रात तक यह मनोमंथन चलता रहा।

महाभिनिष्क्रमण :

एक बार राजा शुद्धोदन अपने साथ कुमार सिद्धार्थ को लेकर बसन्त की शोभा देखने गये। राजा बाहिरी शोभा देख रहे थे, पर सिद्धार्थ कुमार का चिन्तनशील मानस कुछ और ही देखने में लीन था। पास ही के खेत में एक किसान अपने बैलों पर सटासट चाबुक मारते हुए हल चला रहा था। बैलों को चुपचाप अपने स्वामी की मार सह कर भी काम करना पड़ता था। यह देखकर कुमार को बड़ा दुख हुआ। कुछ दूर आगे, जब उन्होंने जरा बारीकी से देखा कि एक छिपकली चींटियों को बीन बीन कर खा रही है। इतने में एक साँप बिल में से निकला और वह उस छिपकली को देखते-देखते खा गया। परन्तु साँप की भी कज़ा आ गई थी। ऊपर से एक चील ने जब उस साँप को देखा तो वह झपट कर उसे ऊपर उड़ा ले गई। इतने में एक शिकारी ने अपने तीर का निशाना लगाया और तत्क्षण वह चील ऊपर से नीचे आ गिरी। यह सब इस तरह हुआ कि किसी साधारण मनुष्य के समझ में भी नहीं आ सकता, लेकिन कुमार ने जीवन-कलह का निष्ठुर स्वरूप इतने से ही भलीभांति समझ लिया। उनके मुँह से तत्क्षण उद्गार निकल पड़े कि—अरे रे! जगत् ऐसा विचित्र है? बलवानों का निर्बलों को हैरान कर मौज-मजा करना क्या यही सारे व्यवहार का सार है! इस दूसरे प्रसंग से कुमार सिद्धार्थ का मन दुनिया के स्वार्थी व्यवहार से सर्वथा उदासीन हो गया। अन्त में एक दिन उनकी यह स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि मध्यरात्रि में वे अपने नवजात शिशु राहुल और देवी यशोधरा को निद्राधीन छोड़कर महाभिनिष्क्रमण कर गये।

सत्य की उपलब्धि :

सत्य की शोध के लिये उन्होंने अनेक तपश्चर्याएँ की और शरीर कष्ट सह कर सत्य की प्राप्ति की। बुद्ध होकर उन्होंने फिर चार आर्य सत्य का मध्यममार्ग का उपदेश देना शुरू किया। यह मध्यममार्ग मानव-जीवन को दो बंधनों से मुक्त करता है। मानव-जीवन का पहला बंधन कामोपभोग की आसक्ति है। इस बंधन में बंध कर मानव समाज का अधिकाश भाग आपस में लड़ झगड़ कर दुख को प्राप्त करता है। अतः यह त्याज्य है। भगवान बुद्ध के जमाने में कामोपभोग की आसक्ति छोड़कर कितने ही परिव्राजक तापस होते थे जो कि अज्ञान-पूर्वक कष्ट सहन कर देह का दमन करते थे।, लेकिन यह सब बिना प्रयोजन के करते थे। यह उस समय के मानव जीवन का दूसरा बंधन था। इन दोनों बंधनों से मुक्त रह कर भगवान बुद्ध ने मध्यममार्ग का बीज बोया था।

चार आर्य सत्य :

भगवान बुद्ध ने जिन चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया था वे इस प्रकार हैं: (१) वस्तु मात्र क्षणिक और दुखरूप है। (२) तृष्णा दुख का मूल है। (३) तृष्णा के नाश से दुख का नाश होता है—अन्त होता है। और (४) राग-द्वेष और अहंभाव दूर होने से निर्वाण की प्राप्ति होती है।

बुद्ध की क्रान्ति :

भ० महावीर और भ० बुद्ध दोनों समकालीन महापुरुष थे और धर्म प्रचार का क्षेत्र—विहार भी दोनों का एक ही था। दोनों राजकुमारों के त्याग का असर भारत के एक कोन से दूसरे कोने तक पहुँच गया था। भ० बुद्ध ने अनेक सामाजिक कुरूढ़ियों का सामना किया था। ऊँच-नीच के जाति-भेदों ने अखंड मानव-समाज के टुकड़े टुकड़े कर दिये थे।

भ० बुद्ध ने फिर से मानव-समाज को एक करने के लिये जन्म-जातिवाद का विरोध किया और गुण तथा चारित्र्य का महत्व बताते हुए उन्होंने कहा—

न जच्चा वसलो होती, न जच्चा होति बम्भणो।
कम्मणा वसलो होति, कम्मणा होति बम्भणो।

—जाति से कोई ब्राह्मण या शूद्र नहीं होता, कर्म से ही ब्राह्मण या शूद्र होता है।

जातिवाद का रोग:

जातिवाद का यह रोग मानव-समाज को हजारों वर्षों से लगा हुआ है, जो कि आज भी दूर नहीं हुआ है। बिहार में 'मुंड' और 'हु' नाम की दो जातियाँ हैं जो अपने सिवा दूसरे को मनुष्य ही नहीं मानतीं। वह ब्राह्मणों से भी अधिक छूआछूत का खयाल रखती हैं। वह कुत्ते का छुआ खा सकती हैं, पर ब्राह्मण के हाथ का पानी नहीं पी सकतीं। एकबार बिहार में जब दुष्काल पड़ा था, तब उस जाति के कुछ लोग भी एक राहत भोजनालय में भोजन करने आया करते थे। एक दिन जब वे भोजन कर रहे थे, तब एक खिस्ती फोटोग्राफर उनका फोटू लेने के लिये वहाँ जा पहुँचा। उसने वहाँ जैसे ही पैर रखा वैसे ही वे लोग अपना भोजन छोड़ कर भाग गये। यह जातिवाद का ऊँच नीच का रोग है, जिसके लिये भ० महावीर और बुद्ध की शिक्षा ही राम-बाण औषधि है।

पशु-यज्ञ के विरोध में बुद्ध का साहस:

उस समय पशु-यज्ञ में धर्म माना जाता था। निर्दोष पशुओं की यज्ञ में बलि दी जाती थी। इससे दूसरी तरफ पशुओं की कमी पड़ने से खेती में जो नुकसान होता था उसका परिणाम भी मानव-समाज को ही भोगना पड़ता था। इस पशु यज्ञ का विरोध करना और इसके लिये अद्भु

जमाये हुए ब्राह्मण पुरोहिता का विरोध करना कोई कम साहस का काम नहीं था। लेकिन जिन्दगी जोखम में डाल कर भी भ० बुद्ध ने यज्ञ में होने वाली घोर हिंसा के विरुद्ध अपना नारा बुलन्द किया और अहिंसा का सन्देश सारे जगत को सुनाया।

राजा बिम्बिसार को उसके यहाँ होने वाले यज्ञ की बात कहने के लिये भ० बुद्ध कई मील लम्बा रास्ता काट कर भी वहाँ पहुंचे। यज्ञ की तैयारी हो रही थी। ऋत्विज हाथ में चमकता हुआ छुरा लेकर खड़ा था। ब्राह्मण मंत्रोच्चार कर रहे थे। पास ही में एक निर्दोष पशु-मेंढा थरथर काँप रहा था। महाराज बिम्बिसार दोनों हाथ जोडे आसन पर बैटे हुए थे। मंत्रोच्चार के स्वर जैसे जैसे बढ़ने लगते हैं वैसे वैसे ऋत्विज का हाथ भी छुरा लेकर ऊपर उठने लगता है और उधर सामने खडे हुए मूक पशु के कंठ से अन्तिम चीख भी निकल पड़ती है। इतने मे ही वहाँ भगवान बुद्ध आ पहुँचे और उस मूक पशु को अपनी आड में लेकर सिंहनाद करते हुए बोले ' ठहरो पुरोहित, ठहरो।' इस तेजस्वी राजऋषि को देख कर सब स्तब्ध हो जाते हैं। ऋत्विज के हाथ कांपने लगते हैं और छुरा नीचे गिर पड़ता है। राजा रोष में आकर कहता है : "आहुति के लिये कितने अथक प्रयत्नों द्वारा ज्योतिषियों ने यह शुभ घडी बताई थी, पर उसमें तूने व्यवधान डाल कर जो भयंकर अपराध किया है, क्या उसका तुझे भान है ? इस अपराध की सजा क्या हो सकती है, इसकी तो तुझे खबर है न ?"

बुद्ध ने शांति से जबाब दिया— "हाँ राजन् ! यह मैं जानता हूँ। इतने जीवों की रक्षा के खातिर यदि मुझे अपना सिर भी देना पड़े तो इसकी तैयारी कर के ही मैं यहाँ आया हूँ।" भ० बुद्ध की इस स्वार्पण की भावना का प्रभाव राजा बिम्बिसार के हृदय पर पड़े बिना न रहा।

उसने भ० बुद्ध के अहिंसा के उपदेश को ग्रहण कर लिया। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि ऐसे अनेकों प्रसंगों में भी भ० बुद्ध ने अपनी जिन्दगी को जोखिम में डाल कर अहिंसा का प्रचार किया था।

वैर से वैर दूर नहीं होता :

वैर-वृत्ति द्वेष या शत्रुता भी सूक्ष्म हिंसा ही है। द्वेष से द्वेष की वृद्धि होती है और वैर से वैर ही बढ़ता है। वैर-वृत्ति से हम सामने वाले की वैर वृत्ति को दबा नहीं सकते। उसका अन्त तो अवैर वृत्ति से ही किया जा सकता है। अद्वेष से ही द्वेष को जीता जा सकता है। और अहिंसा से ही हिंसा का नाश किया जा सकता है। बुद्ध ने भी अपनी वाणी में कहा है :

नहि वेरेन वेराणि, समन्तीधि कदाचन।
अवेरेण च समंती एस धम्मो सनन्तनो।

भगवान् बुद्ध इस सन्देश के उपदेशक बनने से पहले उपासक बने थे। यह सिद्धान्त केवल बुद्धि की खोज नहीं है, बल्कि जीवन के अनुभव का सार है।

एक कवि की कल्पना :

एक अंग्रेज कवि उनका एक सुन्दर प्रसंग अपनी कविता में चित्रित करते हुए कहता है—एक बार भगवान् बुद्ध जंगल में चले जा रहे थे। इतने में सामने से एक भयंकर राक्षस आया और बुद्ध की मजाक करते हुए बोला—"ऐ शान्ति के उपदेशक! और प्रेम की बातें करने वाले! मैं अभी तुझे मार डालता हूँ और फिर देखता हूँ कि तेरा प्रेम और शांति का अखंड झरना तब भी बह सकता है क्या?" यह कहकर उसने अपनी तलवार उठाई और बुद्ध के सामने कर दी। भ० बुद्ध ने

शांति और प्रेम भरे शब्दों में कहा—'प्यारे मित्र! मैं तो अभी भी तुम्हें चाहता हूँ, मुझे तुम पर द्वेष नहीं, प्रेम ही उत्पन्न होता है।' आगे चलकर वह अंग्रेज कवि कहता है कि 'यह नम्र वाणी सुन कर वह भयंकर राक्षस एक कबूतर के रूप में परिवर्तित हो जाता है और बुद्ध के चरणों में लोट जाता है। कहने का सारांश इतना ही है कि प्रेम से भयंकर राक्षस-वृत्ति को भी कबूतर की तरह नम्र बनाया जा सकता है।

युद्ध अशांति के कारण हैं :

इस युग में गत २५ वर्षों में ही दो विश्वयुद्ध हो चुके हैं। दुनिया ने बड़े विषम कष्ट सहन किये हैं। नैतिक जीवन पर युद्धोत्तर जो बुरा परिणाम हुआ है, उसे हम सभी जानते हैं। यूरोप के लोग गत दोनों युद्धों का स्मरण करते ही थरथर कांपने लगते हैं। वे युद्ध और हिंसा से डर तो गये हैं, फिर भी वे आज तीसरे विश्वयुद्ध को न्यौता दे रहे हैं, ऐसा प्रतीत होता है। इस विषम परिस्थिति को मिटाने का अगर कोई मंत्र है तो वह केवल भ० बुद्ध का दिया हुआ प्रेम-मंत्र ही है। इसी से सारी दुनिया में अमन-चैन और सुख-शान्ति स्थापित की जा सकती है।

भ० बुद्ध के आज के जन्म-दिवस को अगर सफल करना हो तो उसका एक ही उपाय है, और वह यह कि प्रेम और मैत्री भावना का बीजारोपण कीजिये, उनकी पुष्टि और वृद्धि कीजिये और अपने जीवन में उतार लीजिये।

आर्य-अष्टांग और हमारा जीवन :

भ० बुद्ध ने चार आर्य-सत्य को सिद्ध करने के लिये: १. सम्यग्दृष्टि यानी सच्चा ज्ञान, २. सम्यग् संकल्प यानी शुद्ध विचार, ३. सम्यक् वाक्-यानी सत्य भाषा, ४. सम्यग् कर्म—शुध्द कर्म, ५. सम्यक आजीव-

शुद्ध आजीविका, ६. सम्यक् व्यापार यानी शुद्ध पुरुषार्थ, ७. सम्यक स्मृति–शुद्ध स्मृति और ८. सम्यक् समाधि यानी चित्त की शुद्ध एकाग्रता नामक आर्य अष्टांग का मार्ग बताया है। ये आर्य अष्टांग आर्य-पुरुष के आठ गुण हैं।

आज हम अपने आप को आर्य कहलाने का गौरव तो अनुभव करते हैं, पर आर्यत्व के गुणों में से कितने गुण हममें हैं, क्या इसका भी विचार हम करते हैं? सच तो यह है कि आज हमारा जीवन इन आठ गुणों से बिलकुल विपरीत दिशा में बह रहा है। हमारे जीवन में न तो सम्यक् दृष्टि है, न सम्यक् वाक् और न सम्यक् आजीविका ही। ये तीन भी सम्यक् हो जायं तो दुनिया से आधे अनर्थों का अन्त हो सकता है। सच्चा आर्य कहलाने के लिये इन आर्य-अष्टांगों को अपने जीवन में ताने-बाने की तरह बुन लेने की जरूरत है। जब हम इनका पालन कर चार आर्य-सत्य का अनुकरण करने लगेंगे तभी हम भ० बुद्ध की जयंती को सफल कर सकेंगे।

विजया दशमी
सं० १९९९

[चैतन्य योगाश्रम, घाटकोपर द्वारा आयोजित सभा में दिया गया प्रवचन]

: ३ :

मानवता प्रेमी बुद्ध और बापू

बुद्ध और गांधी जयंतियों का संगम :

आज विजयादशमी का दिन म० बुद्ध का जन्म-दिवस है। साथ ही साथ हमारा सारा देश गांधी-जयंती के निमित्त गांधी-सप्ताह भी मना रहा है। गांधी-सप्ताह कल २ अक्टूबर को पूर्ण होगा, इसलिये आज बुद्ध और बापू दोनों के जन्म-दिवसों का संगम हो जाने से यह पर्व महान् बन गया है।

अहिंसा की ज़रूरत :

दोनों ही महापुरुष अहिंसा के पैगम्बर थे। म० बुध्द के जमाने में हिंसा का धार्मिक क्षेत्र में साम्राज्य था और अब गांधी युग में राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में हिंसा का तांडव नृत्य हो रहा है। म० बुद्ध ने क्रान्ति कर धार्मिक क्षेत्र की हिंसा और पशु यज्ञादि की प्रथाओं को दूर कर पुनः अहिंसा का साम्राज्य स्थापित किया था। बापू ने भी राजनीतिक क्षेत्र में हिंसा का सामना अहिंसा से किया और अन्त में विजय प्राप्त कर दुनिया को दिखा दिया कि हिंसा को भी अहिंसा से परास्त किया जा सकता है। हिन्द जैसी दुनिया के पांचवे हिस्से की प्रजा को उन्होंने एक बूंद भी रक्त बहाये बिना गुलामी से मुक्त करा दिया। आज दुनिया को सब से अधिक आवश्यकता इसी अहिंसा की है। युद्ध मे हारे हुए जगत को शांति तो प्रभु महावीर, बुद्ध और बापू की अहिंसा से ही मिल सकेगी।

म० बुद्ध तथा महात्मा गांधी इन दोनों महापुरुषों के जीवन तथा उपदेश में जो साम्यता पाई जाती है वह आज हम दोनों की पुण्य-तिथि पर देखने का प्रयत्न करेंगे।

अंत्यजों का आत्मोत्कर्ष :

म० महावीर तथा बुद्ध के जमाने में अन्त्यजों की स्थिति बड़ी खराब थी। वेदों के अध्ययन तथा धर्म-पालन का उन्हें अधिकार ही नहीं था। जैन और बौद्ध धर्म ने जाति-गत भेद-भावों को अस्वीकार किया था, जिससे ये दोनों धर्म अन्त्यजों के लिये आशीर्वाद रूप बन गये थे। वे उच्च जाति के अन्यायों से बचने के लिये बड़ी उमंग से इन धर्मों को स्वीकार करते थे। म० महावीर के श्रमण-संघ में ब्राह्मणों के जुल्मों से पीड़ित और उनसे तिरस्कृत दो हरिजन भाई चित्त और संभूति तथा अन्य हरिजन हरिकेशी और मेतारज आदि आसानी से प्रविष्ट हो आत्मोत्कर्ष साध सके थे। इसी तरह थेर गाथा में म० बुद्ध के अेक हरिजन शिष्य थेरसुनीत का भी उदाहरण आता है। थेर सुनीत एक नीच जाति में उत्पन्न हुआ था। झाड़ू लगाते-लगाते जब एक दिन उसने भिक्षुओं के साथ बुद्ध को देखा तो अपना झाड़ू-टोकरा फेंक कर उसने उन्हें प्रणाम किया और अपने को भी भिक्षु-संघ में दीक्षित कर लेने की प्रार्थना की। बुद्ध ने भी उसकी भक्ति-भावना को देख कर दीक्षित कर लिया था।

बापू का हरिजनोद्धार :

आज के अन्त्यजों की स्थिति देख कर युग-पुरुष गांधीजी का हृदय भी कांप उठा था, जिनके उद्धार के लिये उन्होंने भगीरथ प्रयत्न किया और अुन्हें 'हरिजन' नाम से संबोधित किया। पूजनीया कस्तूरबा से लेकर अनेक मित्र कुटुम्बियों का और अन्य सनातनियों का विरोध होने पर भी उन्होंने अपने आश्रम में हरिजन बालकों को रखा और उनका पोषण अपने बालक की तरह किया। इतना ही नहीं, सभी तरह के भेद-भाव दूर कर खान-पान-लग्नादि संबंधों को भी चालू किया। वे बहुधा हरिजनों के बीच में ही निवास करते थे। ईश्वर के द्वार सबके लिये खुले होने चाहिये,

इसका उन्होंने आन्दोलन किया और जीवन में यह सिद्ध भी कर दिखाया। इस प्रकार इन दोनों महापुरुषों ने हरिजन-उद्धार का कार्य एक समान ही किया था।

सेवा-शील बुद्ध और बापू :

बुद्ध का सेवा भाव और उसके लिये उनका उपदेश हम इस एक प्रसंग से ही जान सकते हैं। विनय पिटक में इसका उल्लेख आता है कि एक भिक्षु को पेट की बीमारी थी और वह मल-मूत्र से भरा हुआ पड़ा रहता था। संयोग से एक दिन भ० बुद्ध भिक्षु आनंद के साथ विहार करते हुए वहाँ आये। उन्होंने उससे पूछा– "आयुष्मन् ! तुझे कैसा मालूम होता है ?" भिक्षु ने कहा– "मुझे पेट का रोग है।" बुद्ध ने पूछा "तुम्हारी कोई सेवा करने वाला भी है या नहीं ?" उसने कहा— "मैं भिक्षुओं के लिये भार रूप हूँ इसलिये मेरी सेवा कौन करना चाहेगा ?" भ० बुद्ध ने आनंद से कह कर पानी मंगाया और फिर उसे दोनों ने साफ कर एक स्वच्छ बिछौने पर सुलाया। इस प्रसंग को लक्ष्य में रख कर भ० बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा– "भिक्षुओ ! तुम पहले अपने रोगी भिक्षुओं की सेवा क्यों नहीं करते ? जिनको मेरी सेवा करनी हो, वे पहले रोगी की सेवा करें। उनकी सेवा ही मेरी सेवा है।" इस प्रकार उन्होंने सेवा का आदर्श उपस्थित किया था।

गांधीजी की सेवा भावना तो सुविदित है। सेवाग्राम में वे कुष्ट रोगी परचुरे शास्त्री की सेवा स्वयं अपने हाथों से किया करते थे। खुजली या चंपी रोगों के दर्दी जब उनके पास आते थे तो वे स्वयं अपने हाथों से उन पर मलहमपट्टी किया करते थे। कइयों को अपने हाथों से एनिमा भी देते थे। इस तरह दोनों ही महापुरुषों ने अपने जीवन में सेवा का एक-सा आदर्श उपस्थित किया था।

धार्मिक समन्वय :

भगवान् बुद्ध के धर्म का आधार पवित्रता, त्याग और सदाचार है। पंचशील-(अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और मादक पदार्थों का त्याग) रूप धर्म का उन्होंने प्रचार किया था। गांधीजी की विचारधारा का मूल भी सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, मादक द्रव्यों का त्याग और अस्तेय रहा था, जो कि भ० बुद्ध के पंचशील-धर्म का ही आधुनिक स्वरूप है।

सद्भावनाद्वारा प्रतिकार :

आज से २५०० वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध कह गये हैं कि घृणा करने से घृणा दूर नहीं होती। वह प्रीति करने से ही मिटती है। इस प्रकार हमको आनंद पूर्वक जीना चाहिये और हम से जो घृणा करते हैं उनसे भी हमें घृणा नहीं करनी चाहिये। उनके बीच में रहते हुए भी हमें घृणा-विहीन रहना चाहिये। लालच पर उदारता से और असत्य पर सत्य से विजय प्राप्त करनी चाहिये। महात्माजी भी प्रेम से द्वेष को, अहिंसा से हिंसा को जीतने के लिए कहते ही रहते थे। उन्होंने केवल कहा ही नहीं था, जीवन भर अहिंसक लड़ाइयां भी लड़ी थीं। उन्होंने कहीं भी सैनिकता या गोलीबार जेल-यातना या लाठी प्रहार के सामने अपना हाथ भी ऊँचा नहीं किया था।

साम्प्रदायिक और दार्शनिक वादों के बीच बुद्ध :

भ० बुद्ध के समय में मत-मतांतर और पंथ-संप्रदायों के अनेक झगड़े थे। दार्शनिक वाद-विवादों का पार नहीं था। आत्मवाद, अनात्मवाद, नित्यत्व, अनित्यत्व, द्वैत अद्वैत, ईश्वर कर्तृत्व, निरीश्वरवाद, सृष्टिकर्तृत्व, अनादित्व आदि दार्शनिक प्रश्नों के वितंडावाद में प्रेम, मैत्री रूपी शुद्ध धर्म का झरना शुष्क हो गया था। भ० बुद्ध ने इन सब वादों को छोड़ कर प्रेम, मैत्री, अहिंसा और सत्य-धर्म के पालने का संदेश सुनाया। उन्होंने कहा—

सृष्टि ईश्वर ने बनाई हो या अनादि हो, मोक्ष का स्वरूप ऐसा हो या वैसा परन्तु जब तुम तृष्णा को छोड़ोगे तभी दुख से मुक्त होओगे। अहिंसा सत्यादि का पालन करोगे तो सिद्ध हो जाओगे—बोधि प्राप्त कर लोगे। राग-द्वेषादि का नाश करोगे तो चाहे जिस स्वरूप का मोक्ष हो, पर वह तुम्हें अवश्य मिलेगा। लेकिन यदि तुम मोक्ष का स्वरूप ही तय करने में रह जाओगे और राग-द्वेष से रहित न बनोगे तो यह निश्चय समझना कि तुम्हारा मोक्ष नहीं होगा। तृष्णा का त्याग और राग-द्वेष पर विजय करने में ही तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है। "इस प्रकार भ० बुद्ध ने सब वादों से दूर रह कर मत-मतान्तरों के सब झगड़ों का अन्त किया था।

विचार से कार्य श्रेष्ठ है :

एक बार भ० बुद्ध के अन्तेवासी शिष्य आयुष्यमान् आनंद ने भ० बुद्ध से पूछा कि "भगवन्! ईश्वर है या नहीं? है तो कैसा है? सृष्टि ईश्वर ने बनाई है या अनादि है? इन चर्चास्पद प्रश्नों पर आप प्रकाश क्यों नहीं डालते?" तब भ० बुद्ध ने कहा— 'आनंद! किसी पुरुष को तीर लग जाय और कोई वैद्य उसकी चिकित्सा करने जाय तो उस समय वह वैद्य उसका तीर निकाल कर मलहम पट्टी करने के बदले और उसके बहते हुअे खून को बंद करने के बदले यदि वह इसकी जाँच करे कि तीर किसने मारा? किसने बनाया? किस दिशा से आया? मारनेवाला काला था या गोरा? तो तुम उसे मूर्ख कहोगे या बुद्धिमान? ऐसी जांच करने के बजाय तो उस समय उसका खून बंद कर मलहम-पट्टी करना ही सयानापन है। इसी तरह हे आयुष्मन् आनंद! ईश्वर, सृष्टि, मोक्षादि की कोरी चर्चा करने मे तो मनुष्य का तृष्णा तीर निकाल कर उसे दुख-मुक्त होने का मार्ग बताना ही श्रेष्ठ धर्म है।

महात्माजी ने भी अपने आश्रम के ग्यारह व्रतों में साम्प्रदायिक कलहों में निरर्थक व्यय होती हुई अपनी शक्ति को बचाने के लिये सर्वधर्म समभाव का समावेश किया था। वे भी कहते रहते थे कि किसी भी धर्म की निंदा किये वगैर उसमें रही हुई अच्छाइयाँ सहर्ष ग्रहण कर लेनी चाहिये। इस दिशा में भी दोनों के दृष्टिकोणों में समानता थी।

धर्म का उपदेश कब ? :

भ० बुद्ध यह मानते थे कि जब तक मनुष्य की अन्नादि की प्राथमिक आवश्यकता पूरी न हो तब तक नीति, धर्म या आध्यात्मिकता चाहे जितना ऊँचा उपदेश क्यों न हो, उसके गले नहीं उतारा जा सकता। मनुष्य के पेट का खड्डा जब तक नहीं भरता तब तक वह स्थिर चित्त होकर कुछ सुननेवाला नहीं है। इसलिये पहले अन्न चाहिये और फिर ज्ञान, ऐसा उनका मानना था। जैसा कि उनके इस एक प्रसंग से स्पष्ट हो जायगा।

एक बार भ० बुद्ध आलवी गांव में एक दरिद्र, परन्तु नम्र मनुष्य की योग्यता देख कर वहां आये। बुद्ध आये, यह सुनकर उस दरिद्र मनुष्य को भी धर्म के दो बोल सुनने की इच्छा हुई। परन्तु दुर्भाग्य से उसी दिन उसका एक बैल कहीं भाग गया था। अतः उसने बैल को ढूंढ कर ही धर्मोपदेश सुनने का तय किया। बैल मिल गया पर दुपहर का समय हो चुका था। खाया-पीया कुछ नहीं था अतः भूख भी जोर की लग गई थी। फिर भी वह घर नहीं गया और दर्शन के लिए पहले बुद्ध के पास आया। बुद्ध ने उसकी क्षुधा-वेदना को समझा और पहले उसके खाने की व्यवस्था की, जब उसकी भूख मिटी और मन एकाग्र हुआ तब बुद्ध ने उसे चार आर्य 'सत्य का उपदेश' दिया'। इससे उसकी ज्ञान दृष्टि खिल उठी और वह भी बौद्ध भिक्षु बन कर संघ में शामिल हो गया।

भूख महान् रोग है :

भिक्षुओं में इस प्रसंग की कुछ चर्चा सुनकर बुद्ध ने कहा—'भिक्षुओ यह सुबह से अपने बैल को खोजने के लिये जंगल में मारा-मारा फिरा है, और वहां से सीधा मेरे पास आया है। ऐसी दशा में मैं इसे उपदेश दूंगा तो वह इसे रुचेगा नहीं। ऐसा समझ कर ही मैंने इसे भोजन कराया है। भूख रोग के समान दूसरा कोई रोग इस दुनिया में नहीं है। दूसरे रोगों को तो चिकित्सा द्वारा दूर किया जा सकता है, पर भूख की तो रोज रोज उठकर चिकित्सा करनी पड़ती है। इसलिये भूख एक महान् रोग है। 'जिघच्छा परमा रोगा' और बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित्' आदि जो सूत्र वाक्य कहे गये हैं वे बिलकुल यथार्थ ही हैं।

महात्माजी ने भी जब हिन्द में करोड़ों मनुष्यों को भूखे-प्यासे और वस्त्ररहित देखा तब उन्होंने भी यह समझ लिया कि भूख का रोग दूर किए बिना नैतिक उत्थान या धार्मिक भावनाओं की जागृति होना अशक्य है। इसको दूर किये बिना दूसरा कोई भी उद्धार का मार्ग उनके गले नहीं उतर सकता। इसलिये उन्होंने भी करोड़ों मनुष्यों को अन्न मिले ऐसे उपाय खोजे। गृह-उद्योग और चरखे का प्रचार किया। और इन सब दुखों का मूल कारण राजकीय पराधीनता को दूर करने में अपना जीवन समर्पण किया।

चीन में गांधीजी का स्थान :

इस तरह कई एक बातों में बुद्ध और बापू में समानता दृष्टि गोचर होती है। इसलिये चीनी लोग बापू को जीवित बुद्ध या महाबोधिसत्व मानते हैं। विश्वभारती (शांति निकेतन) के चीनी प्राध्यापक तानयुन-शान ने एक बार गांधी-जयंती के प्रसंग पर कहा था कि हिन्दवासी गांधीजी को

महात्मा समझते हैं, और पश्चिम के लोग उनको हिन्दी संत या योगी कहते हैं, पर चीनी लोग तो उनको जीवित बुद्ध या महाबोधिसत्व के रूप में समझते हैं। गांधीजी के प्रति चीन में बड़ा गहरा मान और प्रेम है। हिन्द में तो गांधीजी के पक्ष या विपक्ष में टीका भी सुनी जाती है, परन्तु चीन में तो उनके प्रति केवल मान और प्रेम ही है। और वह मान और प्रेम ऐसा है जो सर्वथा शुद्ध और निर्मल है।'

बुद्ध और बापू की इस पुण्यतिथि पर उनके उपदेश तथा जीवन प्रसंगों को याद कर उनका अनुसरण करने का हर एक को प्रयास करना चाहिये। इसी में उनकी सफलता भी है। आज जब कि संसार पाशविक सत्ता में फंसता चला जा रहा है, तब यदि विश्व को कोई उबार सकता है तो वे हैं बुद्ध और बापू के अहिंसा, प्रेम, शान्ति तथा बलिदान के अमर सन्देश। इनके द्वारा ही दुनिया का त्राण हो सकता है।

[चैतन्य योगाश्रम, बम्बई की तरफ से
आयोजित सभा में दिया गया प्रवचन]

: ४ :

पुण्य-श्लोक गांधीजी

पुण्य-कीर्ति बापू :

केवल निर्मल पुण्य ही जिनकी कीर्ति रही है, ऐसे महात्मा गांधीजी के विषय में आज मैं कुछ कहूँगी।

जीवन में जयन्ती :

राम, कृष्ण या बुद्ध, ईशु या मोहम्मद किसी भी महापुरुष की जयंती उनके जीवन-काल में मनाई गई हो, ऐसा इतिहास से ज्ञात नहीं होता। परन्तु महात्माजी की जयंती तो इनकी मौजूदगी में केवल एक दिन तक ही नहीं, एक एक सप्ताह तक मनाई जाती रही है। और वही सिलसिला आज भी चल रहा है। निस्सन्देह यह बात ऐसी है कि जो सहज ही दिल में विस्मय उत्पन्न कर देती है। भला, ऐसी उनमें क्या विशेषता थी?

वादों के बीच गांधीजी :

पितृ-भक्त राम और गीता के रचयिता कृष्ण के जमाने से सर्वथा भिन्न जमाने के महात्माजी एक विरले कर्मयोगी और युग-पुरुष थे। राम ने तो रावणादिक राक्षसों का और कृष्ण ने कंसादिक दुष्टों का नाश कर धर्म-संस्थापना की थी, परन्तु गांधीजी ने तो प्रायः प्रत्येक मानव के मानस में उत्पन्न हुए सैकड़ों कंसों को—साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, जातिवाद, यंत्रवाद, जड़वाद और इसी तरह इम्पीरियलिज्म, इण्डस्ट्रीयलिज्म, नेशनलिज्म और बोल्शेविज्म आदि आदि जो कि मानव-हृदय पर आधिपत्य कर बैठे थे और जो जगह जगह खून की नदियां बहा रहे थे उनको दूर करने में ही—उनके पंजों से विश्व को विमुक्त करने में ही अपनी सारी शक्ति खर्च की थी।

चरखे का नाद :

राम ने सीताजी को रावण से छुड़ाया और कृष्ण ने द्रौपदी की रक्षा की—शील रक्षण के लिये चीर बढ़ाया। परन्तु गांधीजी ने तो करोड़ों हिन्दू माताओं की लाज ढकने और भूख मिटाने का झंडा उठा कर हिन्द के साढ़े सात लाख गांवों में फिर से एक बार चरखे का नाद जगाया और इसी में अपनी जिन्दगी का अधिक भाग गुजारा था।

राम के हाथ में धनुष-बाण थे और कृष्ण के पास था सुदर्शन चक्र, जिसका उपयोग वे स्वयं ही कर सकते थे। परन्तु गांधीजी का धर्म-प्रवर्तन चक्र चरखा, तो ऐसा अनोखा चक्र था कि जिसका उपयोग आबाल-वृद्ध सब कोई बेधड़क कर सकते थे—कर रहे हैं। कृष्ण के चक्र की तरह यह संहारक नहीं, करोड़ों का अन्नदाता—सर्जक सिद्ध हुआ है। इसके चलाने से खून की धारा नहीं निकलती, गाय के अंचल में से निकलनेवाले निर्मल दूध की तरह ही इस चक्र में से भी जीवन रक्षक शुद्ध-श्वेत सूत के तार निकलते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्द की करोड़ों जनता को ऐसा अहिंसक शस्त्र भेंट कर महात्माजी ने मरणोन्मुख प्रजा में नवोन्मेष और नव-प्राणों का संचार किया था।

कृष्ण और गांधी :

कृष्ण ने तो केवल सुदामा को ही गरीबी से मुक्त किया था, परन्तु इस युग के मोहन ने—गांधीजी ने तो कोटि-कोटि जनता को दरिद्रनारायण का पद देकर उसकी सेवा और सुश्रूषा करने में ही अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था। कृष्ण खेल ही खेल में माखन-चोर बने थे। परन्तु गांधीजी तो अपने देश वासियों को सत्य कर्म में निर्भयता सिखाने के लिये खुले आम नमक-चोर बने थे। एक की तो बाल-लीला ही थी, पर दूसरे में था सत्य और मानव पद-प्रतिष्ठा का उच्च उत्साह!

सतयुग का मोहन बंशी का बड़ा रसिया था, जो अपनी बंशी की ध्वनि से गाय का दूध पीते हुए बछड़ों को और हाथ में रस्सी लेकर दूध पिलाती हुई गोप-ललनाओं को व्याकुल किया करता था। परन्तु इस युग के मोहन ने तो 'यंग इंडिया' 'नव जीवन' और 'हरिजन' द्वारा दुनिया भर के मानवों पर अपनी अजब मोहिनी डालकर असंख्य नर-नारियों को मानव-हित के लिये व्याकुल कर दिया। उन्होंने साम्राज्यवादियों के सिंहासन कंपा दिये थे, यंत्रवाद के पाये हिला दिये थे और गुलामी के बंधन ढीले कर फेंक दिये थे।

बापू के पाण्डव :

महाभारत के युद्ध में कृष्ण के साथी धर्मात्मा पाडव थे, जो अतुल पराक्रम होने पर भी धर्मपरायण थे। गाधीजी के सत्याग्रह संग्राम के साथी भी धर्मराज की तरह सरहदी गांधी, धर्मशास्त्र धुरन्धर अबुल कलाम आजाद, सौजन्यमूर्ति राजेन्द्रप्रसाद, भीम की तरह सरदार पटेल और अर्जुन की भांति पं० नेहरू रहे हैं, जिनके पीछे कई अक्षौहिणी सत्याग्रही शांत सैनिकों की कतारें लगी रहती थीं। ये सैनिक विश्व का विनाश करने के लिये नहीं, पर संरक्षक के तौर पर थे, संहार करने के लिये नहीं, पर रक्षण करने के लिये थे। युद्ध को उत्तेजित करने वाले नहीं, पर शांत करने वाले थे। वही आज इस नूतन युग के सर्जक—अग्रगामी बने हुए हैं।

कल-युग नहीं, कर-युग :

कृष्ण सतयुग में जन्मे थे और गांधीजी 'कलयुग' में। लेकिन कलयुग को सत्य-युग बनाने का भगीरथ काम उन्होंने उठाया। कल यानी यंत्र और कलयुग यानी यंत्र का युग। इस विनाशकारी यंत्रयुग ने आज लाखों दलने, पीसने और बुनने वालों की आजीविका छीन ली है और

प्रजा का भक्षण किया है। प्रजा के सत्व का शोषण कर उसके नूर को नष्ट कर दिया है। इस कलयुग ने ही मानव-जाति को सत्व हीन बना दिया, ऐसा आज सब समझने लग गये हैं। कलयुग को 'कर-युग' बनाने पर ही सत्य-युग का जन्म होता है। कल यानी यंत्र की जगह 'कर' यानी हस्तोद्योग का साम्राज्य स्थापित करना सत्य-युग को प्रस्थापित करने का राज-मार्ग है।

गृहोद्योग से विश्व-शान्ति :

महात्माजी ने जब स्वराज्य के साथ साथ गृहोद्योग की बातें कहनी शुरू कीं तब कइयों को आश्चर्य हुआ कि 'यह तो दुनिया को बैलगाड़ी के युग की तरफ ले जाने की बातें हैं।' परन्तु आज वही दुनिया अपनी आँखों के सामने यंत्रवाद और विज्ञान का परिणाम विश्व-युद्ध और आत्म विनाश के रूप में देख रही है। अब महात्माजी की विचार-धारा के पीछे रहे हुए इस सत्य का आभास दुनिया को भी होने लगा है कि विश्व शांति का सच्चा उपाय और अहिंसा हस्तोद्योग को प्रधानपद देने वाली समाज-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था में ही समाई हुई है।

चरखे में निर्भयता :

गांधीजी के धर्म चक्र चर्खे का चमत्कार तो देखिये, जिसको रशियन या अमेरिकन बम स्पर्श तक नहीं कर सकते। यंत्रवादी मिल-मालिकों के हृदय जहाँ रात-दिन बम्बार्डमैंट के भय से धड़कते रहते हैं, वहाँ चर्खा चलाने वालों को न कोई चिन्ता रहती है और न किसी तरह का भय ही। उन्हें तो यह विश्वास होता है कि दो-चार रुपये कीमत वाले चर्खे पर कौन ऐसा मूर्ख होगा जो हजारों की कीमत वाला बम फेंकने का विचार करेगा ? इस प्रकार चरखे को आधुनिक युद्ध और अनेक तरह के शस्त्रास्त्रों के सामने अभेद्य कवच अथवा ताबीज़ बनाकर महात्माजी ने यंत्र-युग को परास्त कर दिया।

विजय का अस्त्र अहिंसा :

राम ने हिंसक शस्त्रों द्वारा रावण से युद्ध किया और कृष्ण ने शस्त्र-धारण न करते हुए भी सारथी बनकर युद्ध का मार्गदर्शक और प्रेरक बनना स्वीकार किया था। भगवान् महावीर ने तो हिंसक शस्त्रों को छुआ तक नहीं था और न किसी हिंसक प्रवृति के मार्ग-दर्शक या प्रेरक ही बने थे। बल्कि उन्होंने तो 'मा हणो मा हणो' का गंभीर स्वर ही गुंजित किया था। यहां तक कि जब उनके प्ररम भक्त चेडा राजा ने भी हिंसक वृत्ति स्वीकार की तब उसका भी उन्होंने प्रतिकार ही किया था। इसी तरह आज के युग में गांधीजी ने भी राजकीय और अन्य सभी क्षेत्रों में अहिंसा को आगे बढाया और कहा कि 'हिंसक शस्त्रों से कभी विजय होनेवाली नहीं है। अहिंसा ही विजय का एक मात्र अमोघ शस्त्र है।' लड़ाई करने वाले देशों को भी वे अन्त तक यही सन्देश सुनाते रहे थे।

महात्माजी के इस सन्देश की भले ही आज सत्ता के मद में मत्त बने साम्राज्यवादी कद्र न करें, परन्तु अन्त में तो मेरा विश्वास है कि इसी राजमार्ग की शरण लिये बिना दुनिया का भला नहीं हो सकेगा।

ईशु ने अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए गिरिप्रवचन में कहा है कि 'कोई तुम्हारे एक गाल पर तमाचा मारे तो तुम दूसरा गाल भी उसके आगे कर दो।' महात्माजी ने तो अपने सत्याग्रही सैनिकों को इससे भी आगे बढ़ कर यह कहा कि 'कोई तुमपर लाठी उठावे तो तुम उसके सामने अपना सिर कर दो।' और उसको सांप ने डस लिया हो तो तुम अपने मुंह से उसका जहर चूस लो।'

मौजूदगी में अनुयायी :

यह सच है कि ऐसी अहिंसा का अनेक विधि दर्शन जो गांधीजी को हुआ था उसमें टाल्स्टाय के लखों का भी असर था। उन्होंने अमे-

रस्किन लेखक थोरो से भी सविनय कानून-भंग का पाठ सीखा था लेकिन टाल्स्टाय और थारो दोनों ही तत्व-चिंतक अपने प्राप्त-मत को पूरी तरह अमल में नहीं ला सके थे जब कि महात्माजी का चिन्तन और वर्तन संयुक्त बन गया था। महात्माजी ने अहिंसा को विचार, उच्चार, आचार और प्रचार में इस तरह समरस कर दिया था कि समस्त संसार के कोने-कोने के विचारवान् मनुष्य इनके प्रति आकर्षित हो गये थे। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि गांधीजी की मौजूदगी में ही उनके अनुयायियों की, जितनी अधिक संख्या हुई थी उतनी अधिक संख्या किसी भी युग के महापुरुष की मौजूदगी में उसके अनुयायियों की नहीं हुई।

युग प्रवर्तक बापू :

रवीन्द्रनाथ टैगोर भारत की विभूति और विश्व कवि थे। वे प्राचीन ऋषियों की अेक प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने भी कहा था कि 'भले ही मैं अपने समय का महाकवि होऊं, परन्तु महात्माजी तो अपने युग के बड़े से बड़े युग प्रवर्तक हैं।' इस प्रकार सूखी लकड़ी जैसा दुबला मानव—बापू सबसे बलिष्ठ निकला। दुनिया के जिस कोने मे आज तक राम, कृष्ण, बुद्ध या ईशू का नाम नहीं लिया गया उस कोने में भी महात्माजी का नाम आज बड़े प्रेम से लिया जा रहा है।

यों केवल पुण्य ही जिनकी कीर्ति रही ऐसे महात्माजी के जीवन-संदेश का आज सर्वत्र पालन हो और जिस पथ के पथिक बन कर उन्होंने हमें मुक्त होना सिखाया उसी पथ पर समस्त संसार चलकर मुक्त बने, यही मेरी भावना है।

२ : १० : ४४ [गांधी जयंती के अवसर पर दिया गया प्रवचन]

:५:

स्वामी विवेकानंद

भारत महापुरुषों की खान :

भारत के नरश्रेष्ठ स्वामी विवेकानंद के नाम से कौन अपरिचित होगा ? वे एक धर्म-प्रचारक और समाज सुधारक महापुरुष थे। उनके मुखारविंद से आर्य ऋषि-मुनियों की विमल-वाणी सरिता स्रोत की तरह प्रवाहित होती थी। हमारा देश भारत महापुरुषों की खान है। समय समय पर यहा एक के बाद एक महापुरुष होते ही आये हैं। कर्मवीर कृष्ण, नरवीर राम और बुद्ध, शंकराचार्य और रामानुज, चैतन्य महाप्रभु और तुलसीदास, कबीर, नानक और गुरु गोविन्दसिंह जैसे अनेक नररत्न भारत ने दुनिया को दिये हैं। इनके बाद रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानंद का जमाना आता है, और फिर गांधी-युग की शुरूआत होती है, जिसमें कि हम अभी जी रहे हैं।

अमेरिका में स्वामीजी :

आज जिस महापुरुष की जयंती हम मना रहे हैं वे एक साधु-पुरुष थे। उन्होंने यूरोप और अमेरिका में जाकर हिन्दू धर्म की ध्वजा फहराई थी। ३ सितम्बर १८९३ में जब अमेरिका के चिकागो शहर में विश्व धर्म परिषद Word's parliament of Religious हुई थी, तब स्वामी विवेकानंद हिन्दूधर्म के प्रतिनिधि बनकर वहाँ उपस्थित हुए थे। विश्व के कोने-कोने से अनेक धर्मों के भिन्न भिन्न विद्वान् प्रतिनिधिगण वहां आये थे। स्वामीजी को जब हिन्दूधर्म के विषय में बोलने को कहा गया तो प्रारंभ में स्वामीजी को कुछ झिझक सी हुई कि मैं यहाँ इन धुरंधर

विद्वानों के समक्ष और वह भी विदेशी भाषा में अपने हिन्दूधर्म के तत्त्वज्ञान को कैसे समझा सकूंगा ? लेकिन फिर भी हिम्मत करके खड़े हुए और बोले—

"Sisters and Brothers of America—अमेरिका के बहिनो और भाइयो !" इतना कहते ही तालियों की गड़गड़ाहट शुरू हो गई। क्योंकि उस देश में ऐसा कहने का रिवाज नहीं है। वहाँ तो बहिनो और भाइयो के बदले Ladies and gentlemen (लेडीज एंड जेन्टलमेन) कहा जाता है। अतः स्वामीजी द्वारा बहिनो और भाइयो का पवित्र संबोधन सुनकर उन्हें बड़ी खुशी हुई। इसे देखकर स्वामीजी का उत्साह दुगुना बढ़ गया और फिर तो उन्होंने घंटों तक ऐसा प्रभावशाली प्रवचन किया कि जिससे न केवल अमेरिका के ही विद्वान् बल्कि सारी दुनिया के विद्वान् आश्चर्यचकित हो गये। देश-विदेश में उनके प्रभाव का यह पहला ही मौका था। लेकिन फिर तो उन्होंने लम्बे समय तक यूरोप और अमेरिका में रहकर हिन्दूधर्म का प्रचार किया और उसकी कीर्ति पर स्वर्ण-कलश चढ़ाया। उनका अंग्रेजी भाषा पर इतना अधिकार था कि अंग्रेजों और अमेरिकनों को भी उनके सामने लज्जित होना पड़ता था। आज भी उनकी वह ओजस्वी भाषा उनके ग्रंथों में सुरक्षित है।

उनके भाषण :

इतने वर्षों बाद भी उनके भाषण पढ़ते समय बिल्कुल नवीन-से लगते हैं। उनमें ऐसी अनोखी प्रेरणा भरी हुई थी कि पढ़ने वाले की सुषुप्त चेतना जागृत हो उठती है। सोये हुए को जगा देने और जागृत को गतिमान करने जैसी प्रेरक भाषा उनके भाषणों में दृष्टिगोचर होती है।

अद्भुत स्मरण-शक्ति :

उनकी स्मरण-शक्ति भी विस्मयजनक थी। 'एन्साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका' जब वे पढ़ रहे थे, तब उनके एक भक्त ने उनसे पूछा

स्वामीजी आप इतना बड़ा ग्रंथ तो पढ़ रहे हैं, पर क्या पूरा याद रह जायगा ? स्वामीजी ने कहा: 'लो, यह पुस्तक और पूछ कर देख लो।' भक्त ने एक विषय पूछा और स्वामीजी ने अक्षरशः वैसा ही जैसा कि पुस्तक में लिखा हुआ था जबानी कह सुनाया। केवल एक बार पढ़ने से ही सारा याद रह जाय ऐसी गजब की स्मरण-शक्ति देख कर भक्त के आश्चर्य का पार न रहा। उसने पूछा ऐसी स्मरण-शक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है। स्वामीजी ने कहा—'अखंड ब्रह्मचर्य से।' उनके ब्रह्मचर्य के तेज से बड़े बड़े मनुष्य भी चकित हो जाते थे। अमेरिका की स्त्रियां तो उनके पीछे पागल हो फिरा करती थीं। 'सिस्टर निवेदिता' तो उनकी वाणी से ही आकर्षित हो सेवा करने के निमित्त भारत में आकर बस गई थीं।

स्वामीजी के गुरु :

सन् १८५७ में जब भारत में विद्रोह हुआ था, तब कई एक विद्रोहियों ने पकड़े जाने के भय से साधु-वेश धारण कर लिया था और इधर उधर फिरने लग गये थे। पुलिस उनको पकड़ने के लिये कई बार सच्चे साधुओं को भी गिरफ्तार कर लेती थी और नाहक उन्हें असभ्य ढंग से हैरान भी करती थी। एकबार एक सच्चा साधु जो कि १४ साल से मौन धारण किये हुए सात्विक जीवन व्यतीत कर रहा था, पुलिस द्वारा पकड़ लिया गया। पुलिस ने उससे खूब पूछताछ की, पर मौन होने की वजह से उसने कुछ जवाब नहीं दिया। तब पुलिस ने समझ लिया कि यह तो कोई विद्रोही ही बाबा बन कर बैठ गया है और अब बचने के खातिर मौन धारण कर ढोंग कर रहा है। पुलिस ने अपनी तलवार निकाली और उसकी छाती में भोंक दी। फिर क्या था? मौत के उन अन्तिम क्षणों में और अपने चौदह साल के मौन के अन्त में भी उस साधु के मुखारविन्द से "तत्त्वमसि" ये दो शब्द ही निकले। अर्थात् उसने उसे पुलिस को भी यही कहा कि 'तुम

भी तुम परमात्मा के स्वरूप हो अतः मेरे लिये तो पूज्य ही हो।' इस अद्भुत शान्ति का मेरू और उदात्त-चरित साधु-पुरुष ही स्वामी विवेकानंद का आदर्श पुरुष था। जिसने ऐसे महान् आदर्श की साधना अपने जीवन में की हो उसका जीवन कितना पावन रहा होगा, इस संबंध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रहती।

भीरुता पाप है :

कमजोरी और भीरुता से उन्हें अत्यन्त घृणा थी और यह उनके भाषणों से स्पष्ट जाहिर होता है। निर्बलता और भीरुता को ही वे सब पापों का मूल समझते थे। उन्होंने कहा है— Strength is life weakness is death, fear is root of sin. वस्तुतः निर्बलता और डरपोकपन को लेकर ही सब पाप उत्पन्न होते हैं। शक्ति और निर्भयता प्राप्त करना ही मानो आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होना है।

दरिद्र-नारायण की सेवा :

दरिद्रनारायण शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम स्वामी विवेकानंद ने ही किया था। मानव-सेवा में ही प्रभु-पूजा का समावेश होता है ऐसी दृढ़ श्रद्धा में से ही इस शब्द का प्रादुर्भाव हुआ था। वे कहते थे कि——

I am ready to under go a hundred thousand rebirths to train up a single man—एक मनुष्य के उद्धार के लिये यदि मुझे हजारों जन्म भी लेने पड़ें तब भी मैं थकूंगा नहीं।' गरीबों के प्रति सहानुभूति रखना यही मानव का सर्व प्रथम धर्म है। ऐसा उनका कहना ही नहीं, समझना भी था। वेलूर मठ के बगीचे में जब मजदूर काम पर आते थे, एक दिन स्वामीजी उनके पास जाकर बैठ गये और उनसे बातें करने लगे। वे हर अेक से पूछने लगे कि तुम्हारे घर में आदमी

कितने हैं ? काम पर कितने जाते हैं ? क्या मजदूरी मिलती है ? गुजारा कैसे चलता है ? रहने के लिये घर कैसा है ? बालक पढते हैं या नहीं ? घर के आदमियों में परस्पर मेल-जोल कैसा है ? आदि बातें वे पूछ ही रहे थे कि इतने में एक संन्यासी ने आकर कहा, स्वामीजी, कलकत्ता के एक धनाढय श्रीमन्त आपसे मिलने आये हैं। परन्तु स्वामीजी ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया और अपनी बातें चालू रक्खीं। दो घंटे तक इन्तजार करने पर भी बंगाली बाबू को स्वामीजी के दर्शन नहीं हो सके। विवश हो उन्हें वापिस लौट जाना पड़ा। स्वामी विवेकानन्द को गरीबों की बातें सुनने में और फिर उन्हें उन्नति का मार्ग-दर्शन कराने में बड़ा आत्म-संतोष का अनुभव होता था।

श्रम का मूल्य :

एक बार स्वामीजी को कलकत्ता में नदी पार करने के लिये नाव में बैठने का मौका आया था। उस समय उनका एक गृहस्थ-शिष्य नाव वाले से किराया तय करने लगा। नाववाला छै आना मांगता था और वह चार आने देने को कह रहा था। इतने में तो स्वामीजी बीच ही में बोल उठे कि भाई! इनके साथ कहीं भाव ताव किया जाता है? यह छै आना मांगता है तो हमें खुशी से आठ आना देना चाहिये।

सच्चा धर्म :

एक और प्रसंग है। एक बार हितवादी पत्र के अधिपति और 'देश की बात' नामक सुप्रसिद्ध बंगाली ग्रंथ के लेखक श्रीयुत सखाराम गणेश देउस्कर अपने दो मित्रों को लेकर स्वामीजी के दर्शनार्थ आये। स्वामीजी को जब यह मालूम हुआ कि इन में से एक गृहस्थ पंजाबी हैं तो उनसे उन्होंने सर्वप्रथम पंजाब के दुष्काल का हाल पूछा, और उसके

लिये किये गये अब तक के प्रयत्नों को सुना। इसके बाद उन्होंने उनसे शिक्षा-प्रचार और समाज-सुधार संबंधी बातचीत की।

स्वामीजी से विदा लेते समय उस पंजाबी सदस्य ने बड़े खेदपूर्वक कहा—'स्वामीजी, वेदान्त की जानकारी के लिये हम यहाँ आपकी सेवा में आये थे, पर दुर्भाग्य से आपने तो साधारण विषयों पर ही बातचीत की। आज का हमारा यह दिन तो व्यर्थ ही चला गया है।' स्वामीजी ने गंभीर होकर उत्तर दिया; 'भाई, जब तक मेरे देश का एक कुत्ता भी भूखा रहता है, तब तक उसको खिलाना और उसकी पूरी सार संभाल रखना मेरा धर्म है। इसके सिवा दूसरा सब अधर्म है या झूठा धर्म है।' दर्शनार्थ आये हुए तीनों गृहस्थ यह सुनकर स्तब्ध रह गये। लेकिन देउस्कर महाशय के हृदय पर तो इसका गहरा असर हुए बिना नहीं रहा। उनके हृदय में तो स्वदेशाभिमान की भावना और गहरी जम गई।

सेवा में ही मुक्ति है :

यूरोप और अमेरिका में हिन्दू-धर्म का प्रचार कर जब स्वामी विवेकानंद स्वदेश लौटे तब उन्होंने यह निश्चय किया कि अपने मठों के साधुओं को केवल मठों में ही नहीं बैठ जाना चाहिए बल्कि भिन्न भिन्न स्थानों पर परिभ्रमण कर स्वामी रामकृष्ण परमहंस के उदार सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहिये। इसी उद्देश्य से उन्होंने स्वामी विरजानंद को अपने पास बुलाया और उन्हें ढाका में उपदेश देने के लिये जाने को कहा। स्वामी विरजानंदजी एकान्तप्रेमी और निवृत्तिपरायण पुरुष थे। उन्हें इस जंजाल में पड़ना अच्छा नहीं लगा। अतः उन्होंने इस बात को उड़ाते हुए कहा: 'स्वामीजी मैं ढाका जाकर क्या उपदेश दे सकूँगा? मैं तो कुछ जानता नहीं हूँ?'

स्वामी विवेकानंद ने कहा: 'तुम्हें वहाँ जाकर 'मैं कुछ नहीं जानता हूं' यही उपदेश देना है। क्योंकि यही तो सबसे बड़ा उपदेश है उपनिषदों में भी कहा गया है कि जो यह कहता है कि 'मैंने ब्रह्म को जाना नहीं, उसी ने उसको जाना है।' परन्तु विरजानंदजी को इससे भी सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने तो अन्तमें साफ साफ कह दिया कि 'स्वामीजी, अभी कुछ समय तक मुझे मुक्ति के लिये और साधना करने दीजिये।' इतना सुनते ही स्वामीजी को रोष आगया और उन्होंने जरा तेज होकर कहा—'यदि तुम अधिकार प्राप्त किये बिना ही मुक्ति में जाना चाहोगे तो नरक में गिरे बिना नहीं रहोगे। यदि तुम्हें सचमुच मुक्ति पद प्राप्त करना हो तो दूसरों की सेवा-सुश्रूषा करो। यही सब से महान् साधन है।' फिर जरा शान्त होकर उन्होंने कहा 'काम करो बेटा, और तन-मन धन से सेवा करो प्यारे! इसे मत भूलो, यही मुख्य वस्तु है। फल की आशा न रखते हुए और दूसरों की सेवा करते हुए यदि तुम्हें नरक में भी जाना पड़े तो कोई डर नहीं! स्वार्थ सिद्धि के वशीभूत हो मिले हुए स्वर्ग-सुख से भी ऐसा नरक सुन्दरतर है।' स्वामी विरजानंद ने इसके बाद स्वामीजी की आज्ञा का पालन किया और उपदेश देना आरंभ कर दिया।

इस प्रकार उन्होंने जन-सेवा में ही ईश्वर-सेवा मानी थी और सत्य-धर्म समझा था। कई बार जब उन्हें गरीब कुटुम्बो मे से किसी के बीमार होने की खबर मिलती तब वे अपने भक्त डाक्टरों को उनकी मुफ्त में चिकित्सा करने को कह दिया करते थे।

नैतिक हिम्मत :

उन में नैतिक हिम्मत भी गजब की थी। जन-सेवा का कार्य करते हुए संन्यास-धर्म का आराधन नहीं किया जा सकता, जब वे अपनी ऐसी

लोकनिंदा अपने ही शिष्यों द्वारा सुनते थे तब वे यही कहते थे कि दुनिया चाहे जो कहे, पर हमको अपना कार्य करते जाना चाहिये।' एक बार जब वे अमेरिका में थे तब उनके एक शिष्य ने यहाँ से लिखा कि लोग आजकल हमारे कार्यों की ही नहीं, हमारी भी प्रत्यक्ष टीका करने लगे हैं। इसका उत्तर देते हुए स्वामीजी ने लिखा था—'हमारी लोक-निंदा विशालकाय हाथी के लिये चींटी के डंक जैसी है।'

स्वामीजी की भविष्यवाणी :

आज से ५० वर्ष पूर्व स्वामी विवेकानंद ने इंग्लैंड पर छाई हुई पाश्चात्य-संस्कृति के विषय में जो भविष्यवाणी की थी वह आज बिल्कुल सत्य प्रतीत हो रही है। उन्होंने कहा था—

The whole of western civilization will Crumble to pieces in the next fifty years if there is no spiritual foundation अर्थात् पश्चिमी संस्कृति यदि अपनी नींव में आध्यात्मिकता का पाया नहीं डालेगी तो ५० वर्षों में उसके टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। यही बात उन्होंने दूसरी जगह भी इस प्रकार कही है—

Europe the centre of the manifestion of material energy, will crumble in to dust within fifty years, if she is not mindful to charge her position, to shift her ground and make spirituality the basis of her life.

जो उपदेश महात्माजी हिंसक युद्धों के संहारकों को दिया करते थे वही उपदेश स्वामीजी ५० साल पूर्व सारी दुनिया को सुना चुके थे।

It is hopeless and perfectly useless to attempt to govern mankind with the sword. मानव समाज पर तलवार के बल पर साम्राज्य जमाने का प्रयास करना निष्फल और निराशा जनक है।'

ऐहिक सुख क्षणिक और दुःख रूप है। प्रत्येक ऐहिक सुख की वासना अपने साथ साथ दुख को भी लेकर आती है, यह बात बताते हुए स्वामीजी कहते हैं—

Every ounce of pleasure brings its pound of Pain 'यानी एक अंश मात्र सुखोपभोग भी एक पौंड दुख को लाता है।'

कथनी या करनी :

आज का मनुष्य बड़ी बड़ी बातें करना तो जानता है, पर आचरण में उसका शतांश भी नहीं उतारता। मन-भर कहने से कन-भर आचरण करना अधिक श्रेष्ठ है। स्वामीजी ने भी कहा है—

An ounce of practice is worth than twenty thousand tons of big talk.

बीस हजार टन उपदेश देने के बदले एक औंस आचरण में लाना अधिक श्रेष्ठ है। इस तरह उन्होंने अपने विविध उपदेशों द्वारा जनता को सत्य-मार्ग दिखाया था।

कर्म-शील संन्यास का आदर्श :

स्वामी विवेकानंद प्रखर तेजस्वी और प्रभावशाली संन्यासी थे। उन्होंने अपने सेवा-कार्य द्वारा धर्म को भी तेजस्वी बनाया था। उनका प्रत्येक सन्यासी किसी न किसी लोकहित की प्रवृत्ति मे लगा रहता था। स्वामीजी किसी को भी काम बिना रहने नहीं देते थे। उन्होंने 'प्रबुद्ध भारत' नामक एक पत्र भी शुरू किया था, जो आज भी चालू है, जिसका आदि से अन्त तक सब कार्य संन्यासी ही किया करते थे। स्वामी विवेकानंद की इस जयंती पर यदि हम उनके विविध जीवनोपयोगी प्रसंगों को स्मरण कर उन्हें अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करेंगे तो हमारा यह जयंती मनाना सार्थक हो सकेगा।

[चैतन्य योगाश्रम, घाटकोपर के तत्वावधान में मनाई गई स्वामी विवेकानंद की जयंती प्रसंग पर दिया गया प्रवचन।]

: ६ :

तिलक श्रद्धांजलि

वे जीवित हैं :

आज अगस्त की पहली तारीख है और यह तिलक श्रद्धांजलि का दिवस है। उनका अवसान हुए २९ वर्ष हो गये हैं, फिर भी उनका जीवन बिल्कुल नवीन ही दिखाई देता है। श्रद्धांजलि का अर्थ है श्राद्ध दिवस। और श्राद्ध का मतलब है: श्रद्धा द्वारा भूतकाल को जीवित रखने का अपूर्व उपाय। लोकमान्य का देहान्त हुए इतना अर्सा हो गया, पर हम अब भी उनसे प्रेरणा प्राप्त करते हैं—स्फूर्ति लेते हैं और अखंड सेवा व्रत की दीक्षा अंगीकार करते हैं। इस प्रकार हम उन्हें मर जाने पर भी अपने में जीवित पाते हैं।

महापुरुष जब तक अपने शरीर में जीवित रहते हैं तब तक वे अपने प्राणों के बल पर ही जीवित रहते हैं। लेकिन जब वे चले जाते हैं तब वे अपने अनुयायियों के बल पर जीवित रहते हैं। फिर उनके अनुयायियों में जितना प्राण होता है उतना ही उनका जीवन भी होता है। लोकमान्य ने जनता के दिल में जो जीवन संचार किया है वह जब तक जीवित रहेगा तब तक वे भी अमर बने रहेंगे।

सच्चे लोक-मान्य :

लोकमान्य की देशभक्ति, विद्वत्ता और वृद्धावस्था में भी काम करने का उत्साह आदि गुण आज के नवयुवकों के जीवन निर्माण के लिए बड़े ही अनुकरणीय हैं। उनके इन गुणों से ही उनकी प्रसिद्धि हिन्दुस्तान के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गई थी। एक बार, जब कि काकासाहब

कालेलकर साधुवेश में थे और काश्मीर का भ्रमण कर रहे थे, तब एक अनपढ ग्रामीण किसान ने उनसे पूछा : "स्वामीजी, आप किधर से पधार रहे हैं।" काकासाहब ने कहा-"बम्बई से।" किसान ने पूछा, "बम्बई क्या लखनऊ के पास है?" उस बेचारे का भूगोल ज्ञान यहीं तक सीमित था। उसे क्या मालूम कि बम्बई कहां है? उसने फिर आगे चलते हुए पूछा, "स्वामीजी, आपका गोत्र क्या है?" स्वामी जी ने उत्तर दिया, महाराष्ट्रियन ब्राह्मण।" इतना सुनते ही वह झट बोल उठा, "तिलक महाराज कब छूटेंगे, क्या आपको कुछ पता है?" बम्बई लखनऊ के पास होगा, ऐसा जिसका भौगोलिक ज्ञान था, वह भी इतना तो जानता ही था कि तिलक महाराज महाराष्ट्रियन ब्राह्मण हैं जो देश के खातिर सरकार से लड़ रहे हैं और सरकार ने उन्हें जेल में डाल रखा है।

लोकमान्य की छाप :

एक बार दिल्ली में भारत मंत्री मोण्टेग्यू साहब आये हुए थे। उन्होंने लोकमान्य को मिलने के लिये बुलाया। जब वे उनसे मिलने दिल्ली पहुंचे तब उनके मान में जुलूस निकालने की सरकार ने मनाई कर दी थी। लेकिन जनता की भक्ति सत्ता के जोर से दबाई नहीं जा सकी। जुलूस न निकलने पर भी दिल्ली तथा आसपास के गांवों के हजारों लोग उनके दर्शन के लिये मार्ग पर आकर खड़े हो गये थे। गांवों के आदमी उस समय आपस में बातें कर रहे थे कि 'आज पूना का राजा आने वाला है। सरकार उससे बहुत डरती है।' कहने का मतलब केवल इतना ही है कि इस प्रकार दूर दूर तक अनपढ़ लोगों पर भी लोकमान्य की छाप पड़ी हुई थी।

शारीरिक स्वास्थ्य के लिए :

लोकमान्य तिलक का मानना था कि यदि मन को सुदृढ़ बनाना हो और संकल्प--शक्ति बढ़ाना हो तो शरीर को सुदृढ़ बनाना चाहिये। ब्राह्मण

जाति में जन्म लेने से उनका विवाह बाल्यावस्था में ही कर दिया गया था। इनकी पत्नी का स्वास्थ्य इनसे अधिक अच्छा था जिससे कभी कभी उनके मित्र इनकी दिल्लगी भी किया करते थे। लोकमान्य का ऐसा स्वभाव था कि वे एकबार जिस काम के लिये दृढ़ संकल्प कर लेते थे फिर उसे पूरा किये बिना नहीं छोड़ते थ। उनको जब अपने शरीर को सुदृढ़ बनाने की धुन सवार हुई तब पूरी तरह से इस काम में जुट गये। इसके लिये उन्होंने अपने कालेज का अभ्यास भी छोड़ दिया और पूरा एक साल अपने शरीर को मजबूत बनाने में ही लगा दिया। उस वर्ष उन्होंने किसी भी दिन कोई किताब उठा कर नहीं पढ़ी और सुबह शाम हर समय व्यायाम का ही शिक्षण लेते रहे। इससे उनका शरीर गठीला और निरोग हो गया था। वृद्धावस्था में भी वे जिस हिम्मत के साथ काम कर सके थे, वह इस शरीर-स्वास्थ्य का और व्यायाम शिक्षा का ही प्रताप था। क्रिकेट, टेनिस आदि खेलों में उनकी विशेष श्रद्धा नहीं थी। देशी व्यायाम से ही शरीर मजबूत बनता है, ऐसा ही वे मानते थे। इसीलिये उन्होंने अपने घर में ही अपने पुत्रों के लिये सब सुविधाएँ कर रक्खी थीं। व्यायाम के विषय में लोकमान्य को इतनी अधिक अभिरुचि थी कि वे जेल में से भी जब अपने घर पत्र लिखते थे तब उसमें अपने लड़कों को व्यायाम करने की सूचना किया करते थे। प्रतिदिन लड़के कितनी बैठकें करते हैं, यह भी पूछा करते थे। आज के युनिवर्सिटी की डिग्री पाने वाले, हमेशा कमजोर और बीमार रहने वाले भाई बहिनों को इस उदाहरण से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि मात्र ज्ञान के विकसित होने से ही काम नहीं चलेगा, शरीर-स्वास्थ्य भी सुदृढ़ होना जरूरी है! बुद्धि बल बढ़ जाने पर भी शरीर के अस्वस्थ रहने से कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। अतः शरीर स्वास्थ्य भी परमावश्यक है। यूरोप के देशों में स्वस्थ बालकों को इनाम दिये जाते हैं और उनके आरोग्य की परीक्षा ली जाती है। हमारे देश में भी इस प्रथा का प्रचार होना चाहिये।

श्री लोकमान्य के जीवन-प्रसगों मे बहुत कुछ जाना-समझा जा सकता है। उनमें से कुछ-एक प्रसग यहाँ कह जाते हैं।

दुःख में धीरज :

ई० सन् १९०२-३ में पूना में बहुत जोरों से प्लेग फैला हुआ था। उस समय लोकमान्य शहर से बाहर एक झोपड़े मे रहते थे। लेकिन वहाँ भी प्लेग ने उनका पीछा नहीं छोड़ा और अन्त में उनके ज्येष्ठ पुत्र विश्वनाथ को, जो कि बड़ा बुद्धिशाली युवक था और फर्ग्युसन कालेज में पढता था, उसका शिकार होना ही पडा। उसी सप्ताह में लोकमान्य के चचेरे भाई और एक भानजा भी प्लेग के शिकार हो गये। इस प्रकार एक के बाद एक मुसीबत आती गई, पर तिलक महाराज ने अपना धैर्य नहीं खोया और शांति से सब सहन किया। ऐसे समय में विश्वनाथ केतकर नामक उनके एक मित्र सान्त्वना देने के लिये उनके पास गये। उस समय तिलक महाराज ने कहा— 'अरे भाई! गाँव की होली में जैसे हर एक घरवाले को उसमें छाना कण्डा डालना पड़ता है, वैसे ही इसमें भी हुआ है।' इस प्रसंग में 'दुःखेष्वनुद्विग्नमनः' जो स्थितप्रज्ञ का लक्षण है उनके जीवन में स्पष्टतः दिखाई पड़ता है। 'सुखेषु विगत स्पृहः' यह लक्षण हम उनके जीवन में एक दूसरे दृष्टान्त से जान सकेंगे।

निस्पृह तिलक :

तिलक महाराज के एक स्नेही मित्र ने बात ही बात में एक बार उनसे पूछा—'बलवतराय! जब स्वराज्य हो जायगा तब तुम अपने राज्य में कौनसा पद पसन्द करोगे? प्रधान मंत्री या परराष्ट्र मत्री?' इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा: 'नहीं रे भाई! स्वराज्य होने पर तो मै अपने स्वदेशी कालेज में गणित का अध्यापक बनकर बैठ जाऊँगा। मुझे राज-पाट की यह चख-चख नहीं चाहिये।'

हरिजनोद्धार :

तिलक के समय में महाराष्ट्री-ब्राह्मणों में छुआछूत का भयंकर भूत लगा हुआ था। वे हरिजनों की छाया तक अपने ऊपर नहीं गिरने देते थे। ऐसे समय में उनके हाथ की चाय पीना और उनके घरों में बैठना क्या कम साहस का काम माना जा सकता है ? अहमदनगर के हरिजनों ने जब लोकमान्य को चाय-पानी का आमंत्रण भेजा तो उन्होंने बिना किसी संकोच के उसे स्वीकार कर लिया। उनका चाय-पानी पी लेनेपर उन्होंने वहां के हरिजनों को संबोधित कर कहा : 'भाइयो! ब्राह्मणों ने तुम्हें नीच गिराया है, ऐसा समझकर तुम उनके प्रति द्वेष मत करना। वे धीरे धीरे अपनी भूल अवश्य सुधारेंगे। हरिजनों को अस्पृश्य मानना चाहिये, ऐसा शास्त्रों में कहीं भी उल्लेख नहीं है।'

उनकी सादगी और पवित्रता :

उनका मन पवित्र और जीवन सादा था। पवित्रता और सादगी ये दो ऐसे पंख हैं जिनसे मानव ऊपर उठ सकता है। आजकल मानव काम तो कम करते हैं और उसका ढिंढोरा अधिक पीटते हैं। लेकिन लोकमान्य ऐसे नहीं थे। वे बड़े सीधे और सच्चे पुरुष थे। बम्बई में जब दैनिक पत्र 'राष्ट्रमत' शुरू हुआ, तब आफिस की सजावट के लिये सीताराम पंत ने बताया कि इसके लिये इतने टेबल और इतनी कुर्सियों की आवश्यकता रहेगी। इस पर लोकमान्य ने कहा "जब हमने 'केसरी' और 'मराठा' शुरू किया था तब हमारे पास तो ऐसा कोई साहबी ठाठबाट नहीं था। वर्तमान पत्र से हमको एक पाई भी नहीं मिलती थी। हम तो अपना बिस्तर गोल कर अपने सामने रख देते थे और लिखते रहते थे। इतना होने पर भी हमारा लिखना मंद नहीं हुआ था।' सादगी और हार्दिक इच्छा से जो काम होता है वह बाह्याडम्बर से कभी नहीं हो सकता। वे केसरी के एक एक लेख से प्रजा में नवजीवन का संचार कर देते थे। सरकार उनके लेखों से

घबराती थी। उसे यह भय हो गया था कि कहीं लोकमान्य के शब्द-बाणों से हमारा साम्राज्य छिन्न-भिन्न न हो जाय। उनके शब्द गोली की तरह अपने लक्ष्य को वेधते थे। सरकार ने कई बार उनके शब्द-प्रयोग से ही भयभीत होकर उन्हें जेलों में बंद कर दिया था।

स्मरण-शक्ति :

बाल्यावस्था से ही उनकी स्मरण-शक्ति बड़ी तेज थी। अध्यापक जब उनसे अधूरी बातों को नोट-बुक में उतार लेने को कहते थे तब वे उनसे कहा करते थे कि नोट-बुक में क्यों उतारूँ? सीधा दिमाग में ही क्यों न उतार लूँ?

अल्पतम वेतन :

न्यू इंगलिश स्कूल जब शुरू हुई, तब लोकमान्य केवल तीस रुपया मासिक वेतन लेते थे। तब एक साथी ने उनसे कहा: 'क्या मर जाने पर हम अपनी दाह-क्रिया करने जितने पैसे भी बचा नहीं पावेंगे!' लोकमान्य ने उत्तर दिया, 'इसकी फिक्र तो हमारे बदले समाज को अधिक होनी चाहिये। मान देने के लिए नहीं, किन्तु गन्दगी दूर करने के लिए भी वह हमारा मुर्दा शरीर तो अवश्य जला देगा।'

हमारा कर्त्तव्य :

इस प्रकार उनके नानाविध जीवन प्रसंगों से जनता सबक सीख सकती है। किसी भी महापुरुष का जन्म-दिवस या श्राद्ध दिवस मनाने का मतलब यही होता है कि जनता उसके जीवन की विशेषताओं का स्मरण कर अपने जीवन में उन्हें उतारने की कोशिश करे। हमें भी यदि आज तिलक-श्रद्धांजलि दिवस को सच्चे अर्थों में मनाना है तो केवल जयनादों से ही नहीं, उनके आदर्शों का स्मरण कर उनको अपने जीवन में उतारने का प्रयास करना चाहिये, जिनमें उनकी सार्थकता समायी हुई है।

बम्बई, १:८:४९ [तिलक-श्रद्धांजलि दिवस पर दिया गया प्रवचन]

: ७ :

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर

कवि का कार्य और क्षेत्र :

आज सातवीं अगस्त रवीन्द्र का श्रद्धांजलि दिवस है। वे भारत ही नहीं, समस्त विश्व के महान् कवि थे। कवि यानी द्रष्टा—देखनेवाला। जो बात साधारण मनुष्यों को बहुत पढ़ने, सुनने, विचारने और अनुमान करने पर भी समझ में नहीं आती वह कवियों द्वारा सहज ही देखी जा सकती है। इसीसे वे द्रष्टा यानी देखने वाले कहे जाते हैं। साधारण मनुष्यकी दृष्टि वर्तमान काल तक ही सीमित होती है, जब कि निर्मल बुद्धि वाले कवियों की नजर अनागत—भविष्यतक पहुँच जाती है। एक मुहावरा है—'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि।' यानी सूर्य दुनिया के समस्त अंधकार का नाश करनेवाला है, परंतु जिस अंधकार को दूर करने में वह भी असमर्थ रहता है, उसे कवि दूर कर देता है। सूर्य तो स्थूल पृथ्वी-पट पर ही अपना प्रकाश फैलाता है, परन्तु कवि सूक्ष्म हृदय पर भी अपना प्रकाश फैलाता है। वह मानव-हृदय के कोने-कोने में पहुँच कर अज्ञानांधकार को दूर करता है। सूर्य की शक्ति तो मर्यादित है, जिससे वह अपने मर्यादित क्षेत्र का ही अंधकार दूर कर सकता है। अभी जब कि सूर्य भारत में प्रकाश फैला रहा है तब वह अमेरिका के अंधकार को दूर नहीं कर सकता। परन्तु कवि की शक्ति सूर्य की तरह सीमित नहीं है। वह एक ही साथ सारी दुनिया के अंधकार को दूर कर सकता है। वह अपने साथ दूसरे को भी दिव्य-दृष्टि दे सकता है।

अुनका स्वदेशाभिमान :

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के हृदय में स्वदेशाभिमान तथा स्वदेशी भाषा का प्रेम उछालें मारा करता था। अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया की सरकार ने जब अपने देश में हिन्दुओं (हिन्द निवासियों) को नागरिक हक पाने से वंचित रखने का कायदा बनाया, तब कविवर ने जब तक यह कायदा रद्द न हो जाय तब तक इन देशों में नहीं जाने की प्रतिज्ञा धारण की थी। अमेरिका का आमंत्रण भी उन्हें मिला, पर वे वहां नहीं गये। असहयोग आन्दोलन के समय ब्रिटिश गवर्नमेंट का दिया हुआ 'नाइट हुड' का खिताब उन्होंने लार्ड चैम्सफर्ड को वापिस लौटा दिया था। विश्व के साहित्य निर्माण में उनका महत्त्वपूर्ण हिस्सा रहा है। उनकी लेखनी किसी भी विषय से अछूती नहीं थी। चरित्र, कथा, कहानी, नाटक, प्रहसन, प्रवास वर्णन, आत्मजीवन, गीत, काव्यादि सभी विषयों में इनकी लेखनी रमी हुअी थी। यही वजह थी कि उन्हें इन सभी विषयों के लेखन में पूर्ण सफलता भी मिली। यह विशाल साहित्य उन्होंने सर्व प्रथम अपनी मातृभाषा में ही लिखा। बाद में उन्होंने स्वयं कुछ ग्रंथों का अंग्रेजी अनुवाद भी किया। लेकिन आज तो विविध भाषाओं में भी उनके अनुवाद सुलभ हो गये है।

गीतांजलि :

कवीन्द्र ने अपनी कल्पना-शक्ति से समस्त संसार में भारत की दिगंत कीर्ति पर स्वर्ण-कलश चढ़ाया है। गीतांजलि जैसी छोटी-सी पुस्तक लिख कर उन्होंने सारी दुनिया को चकित कर दिया। इस पुस्तक पर उन्हें सवा लाख रुपयों का नोबल-पुरस्कार भी दिया गया था, जिसे स्वीकार कर उन्होंने नोबल प्राइज के गौरव में ही अभिवृद्धि की थी। गीतांजलि की कविताएँ इतनी अधिक लोकप्रिय हैं कि फाँसी पर लटका हुआ कैदी भी

इन कविताओं को गाते समय मृत्यु को भूल जाता है। कुछ देर के लिये तो ऐसा लगता है कि मृत्यु भी मानों उस कविता को सुनने के लिये कुछ क्षण ठहर गई हो।

कवीन्द्र रवीन्द्र सचमुच कवियों में सिरताज थे। विश्व-भारती उनका एक सजीव स्मारक है। महर्षि मनु की यह वाणी—

अस्मद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्य स्व चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।

उन्होंने विश्व भारती द्वारा सत्य कर दिखाई है।

आत्मोपासना लेख :

टैगोर यह मानते थे कि आज की दुनिया के तमाम अनर्थों का मूल संकुचित राष्ट्रोपासना ही है। उन्होंने अमेरिका में कहा भी था कि राष्ट्र, प्रजा, धर्म, नेशनेलिज्म, अथवा राष्ट्र उपासना, यह आधुनिक जातियों में एक नया रोग पैदा हुआ है। इसमे सर्वनाश समाया हुआ है। दो राष्ट्रों के बीच में प्रेम की सुलह कराना ही आर्य-संस्कृति का या उसके प्रतिनिधि हमारे कवीन्द्र का सन्देश था। मनुष्य की व्यक्तिगत या सामाजिक सर्वांगीण चरम उन्नति ही आर्य संस्कृति का ध्येय है। स्वातंत्र्योपासक कवि कहता है कि 'आत्मा को छोटी मत करो और दुखों से घबराओ नहीं। उन्हें सहन करो और बड़े बनो। आत्मा अमर है और परिस्थिति क्षण-जीवी है। सहनशक्ति द्वारा भी परिस्थिति पर काबू किया जा सकता है। आत्मदेव की उपासना छोड़कर अहंकार के या राष्ट्रोपासना के पीछे मत पड़ो। आत्मा को ही पकड़े रहो, क्योंकि वही शिव है, मंगल है और परम सुन्दर है। इसलिये उसी की उपासना करो।'

उनका अन्तिम :

टैगोर ने सबसे आखिरी लेख 'प्राइसीस इन सिवीजेशन—पश्चिमी संस्कृति का दिवाला' लिखा था। उस लेख के अन्त में—

अधर्मेण वर्धते नरः ततः भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नान् भवति समूलस्तु विनश्यति ।

यह श्लोक दिया गया था । गुजराती भाषामें जो यह कहावत है कि 'कसाई ने घेर कुशल ने धर्मी ने घेर धाड़' इसका जवाब इस श्लोक में आ जाता है । क्षणभर मनुष्य को ऐसा लगता है कि अधर्म का आचरण करने से, असत्य बोलने से हमको वैभव मिलता है और सुख होता है । इसके विपरीत धर्म का आचरण करने वाला दुखी और दरिद्र होता है । सत्य और नीति के मार्ग पर चलने से यदि दुख होता हो तो फिर धर्म को क्यों कर पकड़ रखना चाहिये ? जब ऐसा सवाल पैदा हो जाता है तब हमारी धर्म भावना की नाव डगमगाने लगती है । इस अस्थिर भावना को दृढ़ करने की रसायन इस श्लोक में भरी हुई है । इसमें कहा गया है कि 'अधर्म से मनुष्य वृद्धि प्राप्त करता है, सुख-वैभव प्राप्त करता है और क्षेम-कुशल बनता है, परन्तु अन्त में उसका समूल नाश होता है । तब फिर यह स्पष्ट ध्वनित हो जाता है कि एक मात्र धर्म से ही स्थायी सुख-शांति प्राप्त की जा सकती है ।

समभाव के सर्जक :

टैगोर कवि थे, इससे हम उनको मान नहीं देते हैं। परन्तु संस्कृत में एक कहावत है कि 'साक्षरा विपरीताः भवंति राक्षसाः ।' जैसे साक्षरा शब्द को उलटने पर 'राक्षसा' शब्द होता है वैसे ही विषम दृष्टिवाले और अल्प-मति कई साक्षर तथा कवि भी राक्षसवृत्ति के होते हैं। यह वृत्ति हमारे कवि में लेश-मात्र भी नहीं थी । उन्होंने जो कुछ भी कहा और लिखा, पक्षपात रखे बिना समभाव पूर्वक ही कहा और लिखा । गांधीजी समभाव के पैगम्बर थे तो रवीन्द्रनाथ समभाव के सर्जक कवि थे । कवीन्द्र की निष्पक्ष वृत्ति और सम दृष्टि को लेकर ही जनता उनको मान देती है । उन्होंने 'नोबल

प्राइज' प्राप्त किया, इससे वे महान् थे, यह बात भी नहीं है। उनकी तरह आज तक कई साहित्यकारों को 'नोबल प्राइज' मिला है, पर उनमें हमारे कवि जैसी विशालता भाग्य से ही दिखाई देती है। 'रुडयार्ड किंटसीन' को भी साहित्य लेखन पर नोबल प्राइज मिला था, परन्तु उनकी मनोवृत्ति तो बहुत संकुचित थी। उदाहरण के तौर पर देखिये उनके ये शब्द :

West is west and east is east and the twin can never meat. My heart is narrow. therefore it can not make room for any country other then my own.

दूसरी तरफ टैगोर की मनोवृत्ति देखते समय तो ऐसा लगता है कि उनके हृदय में प्रेम की सुरसरी बहती थी। उनका भी एक अंश देखिये :

My heart has spread its sails to the idle winds for the Shadowy is land of any where.

इस कवि-सम्राट की कल्पना-शक्ति बड़ी अद्भुत थी। उन्होंने अपने कल्पना के सागर में गहरी डुबकियाँ मार कर अनेकों अमूल्य रत्न और मोती खोजे हैं, जिन्हें अपने काव्य में पिरोकर दुनिया के समक्ष रखा है। इतना जरूर है कि ये अमूल्य जवाहरात उन्होंने खुले नहीं छोड़े हैं, पर सात ढक्कन वाली (डिबिया) में बद किये हैं। चाबी भी डिबिया के भीतर ही है। डिबिया खोलने की योग्यता जिसमें न हो उसको वे मोती नहीं मिल सकते। सुज्ञ पुरुष ही उनको प्राप्त कर सकते हैं। उनका पूरा परिचय तो उनका साहित्य ही दे सकता है। फिर भी उनका यहा थोड़ा-सा परिचय कराया जाता है।

स्वतन्त्रता का संगीत :

'स्ट्रे़बर्ड' नामक उनकी अंग्रेजी पुस्तक में उन्होंने छोटे छोटे वाक्यों द्वारा अन्योक्ति अलंकार में मनुष्य को बड़ा सुन्दर उपदेश दिया है। उसका एक वाक्य है :

The water fall sings 'I find my sOng' when I find my freedom. ऊपर से गिरता हुआ पानी का प्रवाह गाता है कि 'जब मैं स्वतंत्र हुआ तभी अपना संगीत भी प्राप्त कर सका हूं।' इस अन्योक्ति से कवि यह बताता है कि पानी जब तक बंधा रहता है, तब तक उसमें से संगीत नहीं निकलता। उसी तरह आत्मा भी जब तक बधन मुक्त नहीं बनता तब तक उसमें से भी मधुर सगीत का प्रादुर्भाव नहीं होता। विकारों से मुक्त होने पर ही आत्मा संगीत के माधुर्य का अनुभव कर सकता है। दूसरे एक वाक्य में वे कहते हैं:

How far are you from me of ruit 'I am hidden in your heart o flower.'

फूल फल से पूछता है कि 'हे फल, तू मुझ से कितना दूर है?' फल जवाब देता है कि 'मैं तेरे हृदय में छुपा हुआ हूं।' इस वाक्य से वे यह कहना चाहते हैं कि कर्म के पीछे उसका फल तो रहा हुआ ही है अतः सत्कर्म करते समय उसके फल की आशा रखे बिना अनासक्त भाव से करते जाना चाहिये। सत्ता और प्रेम के बीच का अन्तर बताते हुए कवि कहता है—

सत्ता और प्रेम:

Power said to the world 'you are mine: the world kept it prisioner on her throne, love said to the world I am thine, world gave it the freedom of her house.

सत्ता ने विश्व से कहा कि 'तू मेरा है।' विश्व ने सत्ता का यह प्रभुत्व स्वीकार कर लिया। परन्तु जब प्रेम ने सत्ता को कैद कर विश्व से कहा कि 'मैं तेरा हूं' तो विश्व ने उसकी नम्र वाणी से खुश होकर अपने सम्पूर्ण साम्राज्य में उसको स्वातन्त्र्य दे दिया।' सत्ता और प्रेम की शक्ति में यही अन्तर है। सत्ता से प्रजा का शरीर अधीन किया जा सकता है, पर उसके हृदय को तो प्रेम से ही जीता जा सकता है। नौकर पर सत्ता जमाने जायगे

तो वह हमारे सिरपर सवार हो जायगा और अधिक बिगड़ेगा। परन्तु उसी को प्रेम से रखा जायगा तो वह हमारे पांव पड़ेगा और दुगुना काम भी करेगा। लेकिन आज का हाल तो यह है कि मानव-मात्र मे सत्ता चलाने की वृत्ति निर्माण हो गई है। राजा प्रजा पर, सेठ नौकर पर पिता, पुत्र पर, गुरु शिष्य पर, और सास बहू पर, यों हर एक के दिल मे सत्ता की लालसा बढ गई है। लेकिन उनको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि दूसरों को सत्ता से नहीं, पर प्रेम से ही जीता जा सकता है।

नम्र तथा लघु बनने का लाभ बताते हुए कवीन्द्र कहते है:

Tiny Gross your steps are small but you possess the earth under your tread घास जसी क्षुद्र वस्तु भी अपनी नम्रता तथा लघुता से महान् पृथ्वी को अपने पैरो तले रखती है। दूसरों को अपना बनाने की तथा गुरुजनों के कृपा-भाजन वनने की नम्रता ही एक चाबी है।

जन सेवा ही ईश्वर प्राप्ति:

गीतांजलि की ११ वीं कविता मे कवि ईश्वर-प्राप्ति का सच्चा मार्ग बताते हुए कहता है—'मानव सेवा ही ईश्वर प्राप्ति का सच्चा साधन है।' यह कविता रशियन प्रजा को बड़ी प्यारी लगती है। कवीन्द्र को सबसे पहली श्रद्धांजलि अपनी इस कविता से ही रशियन प्रजा द्वारा मिली थी। इस कविता में वे कल्पना करते है कि—'एक भक्त ईश्वर की प्राप्ति के लिये मंदिर में जाता है और उसके सब द्वार बन्द कर ईश्वर का जाप जपने लगता है। माला फेरता है, स्तोत्र गाता है और ईश्वर दर्शन की आशा रखता है। उसको संबोधित कर कवि कहता है—

Leave this chanting and singing and telling of beads! whom dost thou worship in this lonely dark corner of

a temple with doors all shut open thime eyes and see thy God is not before thee! He is there where the tiller is tilling the hard ground and where the path maker is breaking stones.

आंखें मूंद कर मंत्र जपने वाले से कहते हैं—आंखें खोल और देख, तेरा परमात्मा वहां नहीं है। तेरा परमात्मा तो वहां है, जहां किसान अपनी कठोर भूमि पर हल जोत रहा है और मजदूर पत्थर फोड़ रहा है। तुझे यदि उस परमात्मा के दर्शन करने हों तो तू उस किसान और मजदूर के पास जा। उनकी सेवा करेगा तो ईश्वर प्राप्ति जरूर होगी।

'फ्रूट गोर्धारिंग में भी ऐसा ही एक नरोत्तम भक्त का प्रसंग बताया गया है। राज सेवक राजा से जाकर कहता है कि—महाराज, नरोत्तम भक्त अपने इस सोने के कलशवाले मंदिर में भी कभी नहीं आता। वह गाव के बाहर एक झाड़ के नीचे बैठकर ही भगवान् के भजन गाता है। परन्तु वहाँ हरदम आदमियों का मेलासा लगा रहता है और सैकडों नर-नारी उसके पास आते-जाते रहते हैं। लेकिन हमारे इस मन्दिर में तो कोई नहीं आता!! इस समाचार से कुपित हो राजा नरोत्तम भक्त के पास गया और बोला 'ऐसा सुन्दर भव्य और कीमती मंदिर छोड़कर आप भगवान् का भजन करने के लिये यहां मिट्टी पर क्यों बैठे हैं? नरोत्तम भक्त ने शांति से उत्तर देते हुए कहा—Beacause God is not there in your temple क्योंकि परमात्मा तुम्हारे मंदिर में नहीं है।' राजा यह सुनकर स्तब्ध हो गया और बोला—'महाराज, यह क्या कहते हो! मेरे मन्दिर में ईश्वर नहीं है!! क्या आप नहीं जानते कि मैंने कितने खर्च से यह मंदिर बनवाया है? और कितनी भव्य प्रतिष्ठा करवाई थी? दो करोड सोने की मोहरों से यह मंदिर बनवाया गया है।

भक्त ने कहा 'राजन् ! यह सब मैं जानता हूँ। परन्तु जिस समय तुम अपना यह मंदिर बनवा रहे थे, उस समय हजारों मनुष्यों के घर-बार अतिवृष्टि से पानी में बह गये थे, और वे सब मदद की आशा रख कर तुम्हारे पास आए थे। परन्तु तुमने उस समय उनकी सहायता नहीं की। तब ईश्वर ने कहा था—'अरे, यह पामर प्राणी, जो अपने भाइयों के लिये झोंपड भी नहीं बनवा सकता, वह मेरे लिये मंदिर क्या बनवा सकेगा ? उसी समय से ईश्वर ने अपना आसन उस मंदिर में से उठा कर इस पेड के नीचे रख लिया है। इसलिये मैं यही बैठकर भगवान् का भजन करता हूँ। मंदिर मे जो मूर्ति है वह भगवान् की नहीं, तुम्हारे अभिमान की पुतली है। 'इतना सुनते ही राजा की नस नस मे आग फैल गई और वह बोला—'भक्त ! तुम मेरा देश छोड़कर चले जाओ। मैं तुम्हें आज से देश निकाला देता हू।' भक्तने प्रसन्नता पूर्वक जवाब दिया—Banish me where you have banished my God. 'जहां मे मेरे परमात्मा को तू ने सीमा बाहर किया है वहां से तू मुझे भी खुशी मे बाहर कर दे।' इस कविता से टैगोर यह कहते हैं कि जो मनुष्य मानव सेवा नहीं कर सकता वह ईश्वर की सेवा करने का अधिकारी नहीं हो सकता।

उनके विशाल साहित्य सागर के ये थोड़े से जलबिंदु है, जिनके बारे मे मैंने यत्किञ्चित् मात्र ही आपको बताया है। उनका सारा साहित्य ही अध्ययन और अभ्यास करने जैसा है। उनके इस श्राद्ध-दिवस के अवसर पर यदि हम उनके साहित्य का तनिक भी परिशीलन कर आत्मा को उन्नति के पथ पर अग्रसर करेगे तो हमारा उत्थान हुए बिना नहीं रहेगा।

बम्बई
७:८:४४ } [टैगोर श्रद्धांजलि दिवस पर दिया गया प्रवचन]

: ८ :

महात्मा गांधीजी

बापू का प्रेरक जीवन :

गत दो हजार वर्षों मे किसी के लिये इतना लिखा और कहा न गया, जितना पूज्य गांधीजी के सम्बन्ध में। विश्व के अनेकानेक मानवों ने उनके सम्बन्ध मे लिखा और कहा है। उनसे नया कुछ मुझे आज कुछ कहना नहीं रहा। मुझे जो कहना है वह सब पुराना है और अनेक बार कहा जा चुका है। फिर भी वह हममें प्राणों का संचार करने वाला है—नव-चेतन और नव-जीवन देने वाला है। सूरज रोज उदय और अस्त होता है, लेकिन वही सूरज प्रति दिन भी उगता है। इस तरह वही पुराना सूरज रोज रोज़ उदित होकर जैसे नव-चेतन और नव-जीवन दे जाता है उसी तरह महापुरुषों का जीवन भी नव-जीवन देनेवाला होता है।

गांधीजी का धर्म :

कई मनुष्य यह समझते है कि गांधीजी राजनीतिक पुरुष थे। और ऐसे भाई मुझसे पूछते है कि राजनीतिक पुरुषों के बारे मे क्या आप जैसे साधु-सन्त भी बोल सकते हैं? मेरा उनसे कहना है कि गांधीजी स्थूल-दृष्टि से भले ही राजनीतिक पुरुष समझे जाते हों पर सूक्ष्म-दृष्टि से वे एक धार्मिक पुरुष थे। उनके अपने ही शब्दों में कहूं तो I wear the garb of a politician but am at heart a religious man —अर्थात् मैं राजनीति का चोला पहनता हू पर हृदय से तो धार्मिक वृत्ति का हूं। उनके सभी कार्य विवेक-युक्त होते थे। धर्म मे उनकी अटूट श्रद्धा थी। हिंसा में उनका विश्वास

नहीं था। वे यह खुले तौर पर कहा करते थे कि हिंसा या अधर्म से किया गया कार्य कभी सफल नहीं होता। व्यक्तिगत क्षेत्र हो या सामुदायिक, अथवा पारमार्थिक किसी भी क्षेत्र में हिंसा का आश्रय नहीं लेना चाहिये। हाँ, अन्याय का प्रतिकार अवश्य करना चाहिये। प्रतिकार करने का भी तरीका हमें गांधीजी ने अहिंसक बताया। उन्होंने कहा: "प्रतिकार भी धर्म से हो सकता है। अधर्म, असत्य, हिंसा आदि में सच्चा बल नहीं होता, जिससे उनके द्वारा किये गये काम स्थायी नहीं रह सकते। सत्य ही बलवान् है और वही स्थिर भी है। प्रेम और मैत्री ही स्थिर रह सकती है। उदाहरण के रूप में 'अ', 'ब' को तिरस्कृत करे और 'ब' 'अ' को तो दोनों में वैर की ही वृद्धि होगी। पर यदि दोनों में से एक में मैत्री या प्रेम के भाव होंगे तो दूसरे का वैरभाव भी कमजोर पड़ जायगा। वैरी के सामने वैर रखने से तो वैर को अधिक बलवान् बनाता है। अतः वैरी के समक्ष भी वैर न रख कर प्रेम और मैत्री भाव धारण करना चाहिये। गांधीजी ने हमें यही सिखाया है।

उनका प्रकाश स्थायी है :

वे हमारे बीच से चले नहीं गये है। यह सच है कि उनका पंच महाभूत का स्थूल शरीर विलीन हो गया है, परन्तु उनका सूक्ष्म देह नष्ट नहीं हुआ है। आकाश में चमकने वाले तारों में से जो किरण निकलती है वह हजार वर्षों बाद भी दिखाई देती है और अस्त हुए तारों की अन्तिम किरण भी सैकड़ों वर्षों बाद दिखाई पड़ती है। ठीक इसी प्रकार इस महापुरुष के देह में से निकली हुई अहिंसा और सत्य की किरण भी हजारों वर्षों तक ज्योतिर्मान् रह सकेगी और दुनिया को आलोकित करती रहेगी।

समभाव के पैगम्बर :

समभाव उनका मस्तिष्क था। वर्ण, जाति, सम्प्रदाय या देश कोई भी उनके कार्य में बाधक नहीं होते थे। उनके मत में ब्राह्मण और

हरिजन, अमीर और गरीब, काला और गोरा, शिक्षित और अशिक्षित सब समान थे। सचमुच गांधीजी समभाव के पैगम्बर थे।

मानवता के प्रचारक :

मानवता उनका हृदय था। उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति में मानवता ताने-बाने की तरह गुथी हुई थी। रक्त, आँसू और पसीने की नदियों में उन्हें हिंसा ही दृग्गोचर होती थी, जिनकी तरफ उन्होंने हमारा भी लक्ष्य खींचा था। जीवन निर्वाह के लिये तन तोड़कर परिश्रम करनेवाले श्रम-जीवियों का अपने जुल्मी गुलामी मालिकों द्वारा चूसा जाना और उनके स्वजनों का आँसू पीना, बापू से न देखा गया। उनका हृदय पिघल उठा और फल-स्वरूप वे आजीवन संन्यासी बन गये। जैसे गिरधरलाल की मूर्ति पर कोड़े पड़ते और उसके चिन्ह दीखते बावरी मीरा की पीठ पर, उसी तरह दरिद्रनारायण की व्यथा भी बापू के हृदय पर अंकित हो जाती थी। बापू मानवता के रंगरेज थे। अपने पास आनेवालों को वे मानवता के रंग में रंग देते थे। एक बार वे उड़ीसा के प्रवास पर दीनबंधु एंड्रूज के साथ गये थे। स्टेशन पर गाड़ी के इन्तजार में बैठे ही थे कि वहां एक वृद्ध हरिजन आया। वह अपने मुंह में तिनका लेकर बापू के पैरों में गिर पड़ा। बापू ने हँसते हँसते उससे भेंट मांगी। हरिजन के पास एक पैसा था। उसने वहीं अपनी जेब में निकाला और बापू को देने के लिये अपना हाथ बढ़ाया। बापू ने कहा—'मैं कुछ विशेष भेंट चाहता हूँ।' हरिजन बहुत खुश हुआ। उसे लगा कि मेरे पास कुछ विशेष चीज है, जिसे गांधीजी चाहते हैं। बापू ने कहा—'मुझे ये तीन वचन दो : एक तो यह कि किसी भी दिन किसी के सामने मुंह में तिनका नहीं लेना। क्योंकि छोटे-बड़े सभी मनुष्यों को स्वमान होता है, जिसे हर मनुष्य को सुरक्षित रखना चाहिये। दूसरा शराब न पीना और तीसरा मांस न खाना।" हरिजन ने बापू की तीनों बातें मंजूर कर लीं और इस तरह

दो-चार मिनिट के संसर्ग से ही बापू ने उस पर मानवता का रंग चढ़ा दिया। सचमुच उनका ऐसा ही चमत्कार था।

सत्य और अहिंसा की मूर्ति :

सत्य और अहिंसा तो उनके श्वासोच्छ्वास थे। असत्य और हिंसा के वातावरण से उनको अपार दुख होता था। आजादी मिलने से पूर्व और बाद मे जो हिंसा का नग्न तांडव हुआ था उससे उन्हें असह्य पीड़ा हुई थी—उनकी आत्मा रो पड़ी थी। उस भयंकर हिंसा-कांड के बीच भी बापू अहिंसा के दीपस्तम्भ बने और प्रेम का निर्मल प्रकाश फेंकते रहे। उनकी धीमी, पर स्थिर अवाज—वैर का बदला प्रेम से चुकाओ, बराबर गूंजती ही रही। अहिंसा के प्रति उनकी तिल-भर भी श्रद्धा कम नहीं हुई।

सेवा और सत्याग्रह के आदर्श :

सेवा और सत्याग्रह दोनों उनके पैर थे। उनकी सारी प्रवृत्तियाँ सेवा-मय ही थीं। हमारे पूर्वजों ने—भगवान् महावीर और बुद्ध ने—जो मन्त्र दिया था उसे हम भूल गये थे। बापू ने फिर से उसकी याद दिलाई। वे कहते थे कि जो रोगी की—दुखी की--सेवा करता है वह प्रभु की सेवा करता है। भगवान् महावीर से भी एक बार यह प्रश्न किया गया था कि सेवा करने से क्या लाभ होता है? इसका उत्तर देते हुए भगवान् ने कहा था :—'सेवा करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है। तीर्थंकर जैसी योग्यता प्राप्त करने का राजमार्ग भी सेवा ही है। बापू के जीवन मे यह सेवा अनेक तरह से मिली-जुली दिखाई देती थी। सेवाग्राम मे वे अपने हाथों से ही रोगियों की सेवा करते थे। एकबार खुजली का रोगी—एक किसान आया और उसने बापू से अपनी बीमारी का इलाज पूछा। बापू ने सोचा कि यह गरीब मनुष्य अपने लिये साधन सामग्री कहां से लावेगा? उन्होंने अपने लिये भरे हुए टब के पानी से उसे स्नान कराया और फिर अपने

हाथों से उसके शरीर पर मलहम लगा दी। इस प्रकार सेवा और सत्याग्रह उनके चरण बने हुए थे।

अभय और संयम :

अभय और संयम उनकी भुजायें थीं। एक तरफ सारी दुनिया का अभिप्राय हो और दूसरी तरफ अपना निर्दिष्ट सत्य हो तो सारी दुनिया की अवगणना करके भी वे अपने निर्णयानुसार ही चलते थे। उनकी निर्भयता यहाँ तक विकसित हो चुकी थी कि वे किसी भी व्यक्ति या सत्ता से भयभीत नहीं होते थे और न कभी उन्होंने दूसरों को भयभीत करने की इच्छा ही की थी। शिक्षित, अशिक्षित, आबाल-वृद्ध, सदाचारी-दुराचारी सब कोई उनके पास बिना किसी झिझक के आ-जा सकते थे।

तीर्थ-स्वरूप बापू :

पवित्रता और विवेक उनके नेत्र थे। कविवर टैगोर ने कहा है कि 'यक्ष को मनुष्य का रूप धारण करने की इच्छा हुई, और वह गांधीजी के रूप में अवतरित हुआ।' मन्दिर या मस्जिद में जाने पर जैसे पवित्र विचार आते हैं वैसे पवित्र विचार गांधीजी के निकट रहने पर आते थे। मानों वे स्वयं ही तीर्थ-स्वरूप थे।

समाज सुधारक बापू :

प्रजा-हित की अनेकों प्रवृत्तियाँ उनकी रोमावली थी। अस्पृश्यता-निवारण और स्त्री-उद्धार ये दो उनके महान् सामाजिक कार्य थे। मनुष्य के हृदय में रहे हुए झूठे जजाल, अनुचित रीति-रिवाज आदि निकालने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया था। मनुष्य मनुष्य के साथ में जो उच्च और नीच कुल को लेकर पशुता का व्यवहार करता था उसका उन्होंने भान

कराया और अस्पृश्यों के लिये भी अनेकों मन्दिरों के द्वार खुलवा दिये। उन्होंने कहा कि 'मनुष्य अपने कार्य और विचारों से ही ऊँच-नीच हो सकता है, जन्म से नहीं।' स्वामी दयानद सरस्वती ने भी यही मार्ग ग्रहण किया था। भगवान् महावीर ने भी यही सन्देश सुनाया था और आचरण में भी उतारा था। उन्होंने अपने श्रमण-संघ के अन्दर प्रत्येक मानव को बिना किसी भेद-भाव के साधु बनाया था। महात्मा बुद्ध ने भी इसी मार्ग को ग्रहण किया था। उन्होंने भी अत्यजों को अपना साधु बनाया था। आज ढाई हजार वर्ष बाद गांधीजी ने भी मानव को मानव के रूप मे जीवित रहना सिखाया। स्त्री को सभी अबला समझते थे, परन्तु गाधीजी ने उसे निर्भय बनाया और स्त्री एक शक्ति है, यह सिद्ध कर बताया। पाशविक बल भले ही पुरुष में अधिक हो, पर नैतिक बल मे स्त्री पुरुष से भी बढ कर है। स्त्री जागृति का बीज अफ्रिका का में बोया गया था। जिस समय गांधीजी आफ्रिका में थे उस समय एक भाई यहाँ से अपनी पत्नी को लेकर आफ्रिका गये। इस पर आफ्रिका की सरकार ने एतराज किया कि तुमको यहाँ रहने का अधिकार है, तुम्हारी पत्नी को नहीं। इस पर केस चलाया गया और अन्त में कोर्ट ने फैसला दिया कि खिस्ती धर्म के अनुसार जिनके विवाह कोर्ट में दर्ज नहीं कराये गये होंगे ऐसे विवाह गैर-कानूनी माने जायंगे। गांधीजी ने यह सुना तो विचार किया कि अगर इस तरह विवाह गैर-कानूनी माने जायेंगे तो बालक भी गैर-कानूनी माने जायंगे। इस तरह तो हिन्दुओं की सारी सम्पत्ति सरकार के हाथ में चली जायगी। और इस प्रकार विवाहित स्त्री का कोई अधिकार नहीं हो...तो उसका बडा अपमान है। शाक छीलते हुए बापू ने रसोई करती हुई बा से कहा—'जनरल स्मट्स कहता है कि तू मेरी औरत नहीं है, पाशबान है। अब तू क्या करेगी?' बा को उस समय अपनी

शक्ति का भान नहीं था। अतः उन्होंने कहा—'हम तो औरतें हैं, हमसे क्या हो सकता है?'

बापू ने कहा—'जेल में जा!'

बा—'हमसे जाना कैसे होगा?'

बापू—'क्यों नहीं? राम वन में गये थे तो सीता भी उनके साथ गई थी। मैं जेल में जाऊँगा तो तू क्यों नहीं जा सकेगी?'

बा ने कहा—'ठीक है, पर मैं खाऊँगी क्या?'

बापू—'फल खाना, न मिले तो उपवास करना, और कदाचित् तू जेल में मर भी जावेगी तो मैं आजीवन तेरी जगदम्बा के रूप में पूजा करता रहूँगा।' स्त्री जागृति का बीज इन शब्दों में सर्व प्रथम अफ्रीका में बोया गया था।

भाषा और बापू :

बापू ने मानव को मानवता, कायर को साहस, अंत्यजों को आत्मा और गुलाम को गौरव दिया था। कोई भी क्षेत्र उनसे अछूता नहीं रहा था। शिक्षण के लिये उन्होंने शुरूआत से ही विचार किया था और नये नये मार्ग बताये थे। गुजरात विद्यापीठ की स्थापना में उनका अमूल्य सहयोग रहा था। वे अंग्रेजी लिखने और बोलने में भी बड़े सिद्धहस्त थे। जिसे पढ़-सुनकर अंग्रेज भी बहुत खुश होते थे। फिर भी राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी के ही हिमायती रहे थे। उनमें यह अमोघ शक्ति थी कि वे अपने संकल्प-बल से सारे वातावरण में परिवर्तन कर देते थे। उन्होंने खादीका प्रचार करना शुरू किया तो हजारों स्त्री-पुरुष खादी पहनने लग गये। हमेशा जरी और रेशमी कपड़ों को पहनने वाली स्त्रियां भी खादी पहनने में गौरव मानने लगीं। घर घर चरखा चलने लगा और हाथ में तकली रखना भी एक रिवाज़ हो गया।

प्राकृतिक चिकित्सा :

इसके सिवा गांधीजी ने प्राकृतिक उपायों को खोजकर आहार और आरोग्य-शास्त्र में भी अनेक नवीन परिवर्तन करने की सूचनाएं कीं। भाषा को सरल, समृद्ध और आबाल-वृद्ध सब समझ सकें इसका दृढ़ आग्रह रखते हुए एक शब्द-कोश भी उन्होंने तैयार कराया।

हम महापापी न बनें :

संगीत के तो वे बड़े शौकीन थे। प्रभु-भक्ति के भजनों को सुनते सुनते वे तल्लीन हो जाते थे। इस तरह गांधीजी के जीवन से हमें बहुत कुछ जानने को मिलता है। गोडसे ने तो उनके स्थूल देह का ही घात किया है, परन्तु जब हम अहिंसा, सत्य, अभय, विवेक, सेवा और सत्याग्रह का घात करते हैं तब हम उनके सूक्ष्म देह का घात करने वाले महापापी बनते हैं। स्थूल देह तो मिटने वाला ही है, उसे टिका कर रखने की किसी की भी शक्ति नहीं है।

जीवन-मरण :

गांधीजी ने जन्म से मृत्यु पर्यन्त अपनी सारी जीवन-पद्धति दुनिया के समक्ष पेश की है। जीवें कैसे और मृत्यु आवे तो उसका भी हँसते हँसते आलिंगन कैसे किया जाय, यह हमें गांधीजी ने सिखाया है। जीवन की अन्तिम सांस तक भी उन्होंने सेवा-धर्म से अपना मुँह नहीं मोड़ा था।

अमर शहीद बापू :

आज वे एक महान् शहीद बन गये हैं। ईसु ख्रिस्त को उनके अनुयायियों ने ही सूली पर चढ़ाया था। साक्रेटीस के सामने जब सत्य और जीवन दोनों में से एक को कायम रखने का सवाल आया तब उसने सत्य के लिए अपने जीवन की बलि दे देना ही उचित समझा। उसके सम-

कालीन लोगों ने उसे भी जहर देकर मार डाला। श्रीकृष्ण को भी अपने कुटुम्बी के तीर से मौत के घाट उतरना पड़ा था। स्वामी दयानंद सरस्वती अपने ही रसोइये द्वारा जहर देने पर मारे गये थे। मरते समय जब रसोइये ने उनके समक्ष अपने पाप को प्रकट किया तो स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने पास के सभी रुपये देते हुए उस पर अपार दया प्रकट की थी और उसमें भाग कर अपनी जान बचाने को कहा था। बुद्ध को उनका साला सदा मारने को उद्यत रहा करता था। भ० महावीर पर उन्हीं के शिष्य गौशालक ने तेजोलेश्या फेंक कर उन्हें मारने की चेष्टा की थी। प्रायः सर्वत्र महापुरुषों का मरण इसी तरह होता है। महात्माजी को भी उन्हीं महापुरुषों की पंक्ति में खड़ा होना था। निदान वे भी अपने ही देश-भाई के हाथों से मृत्यु प्राप्त कर उन्हीं अमर शहीदों की पंक्ति में जा मिले हैं।

बापू की महान् भेंट :

बापू ने मानवता का महाविमान दुनिया को भेंट किया है। मनुष्य जब पृथ्वी पर खड़ा होता है तब उसके लिये नदी, समुद्र, पहाड़ आदि को लांघना कठिन हो जाता है। क्योंकि ये सभी पृथ्वी के टुकड़े टुकड़े कर देने वाले हैं। परन्तु जब वह विमान से उड़ता हो, तब ये नदी, नाले, पहाड़, समुद्र आदि उसको छूते तक नहीं हैं। उसी तरह प्रेम और मानवता के महाविमान में बैठने वाले मानव-यात्री को भी राष्ट्र-प्रजा, सम्प्रदाय या जाति के भेद नहीं छूते हैं। इन सबसे दूर रह कर वह सरलता से अपना जीवन व्यतीत कर सकता है। बापू ने अपना सन्देश केवल वाणी से ही नहीं, बल्कि अपने जीवन और आचरण से भी सजीव कर बताया था। बंगाल में एक कहावत है—'आमार जीवन ई आमार बानी' यह बापू के लिये बिल्कुल सत्य सिद्ध हुई है।

उनकी इच्छा :

उनकी अन्तिम इच्छा थी कि भारत एक आदर्श देश बन कर वासना-ग्रस्त और दुःख से सन्तप्त बने हुए विश्व को मानवता, मैत्री और प्रेम का पाठ पढ़ावे। उनकी इस इच्छानुसार अगर हम चलेंगे तो उसी में गांधी-जयंती की सफलता है।

बम्बई
-२:१०:४८

[जैन युवक संघ, बम्बई के तत्वावधान में गांधी जयंती के उपलक्ष्य में श्रीमहावीर जैन विद्यालय में दिया गया प्रवचन]

: १ :

महा-मानव का महा-प्रयाण

बापू पर गोली—एक प्रश्न :

आज सारा संसार शोक-सागर में डूबा हुआ है। संसार आज कुछ ऐसा अनुभव कर रहा है कि अनदेखा, अनसुना भूकम्प आज आ गया हो। हर रोज हजारों मनुष्य मरते हैं, किन्तु हमें विचार तक नहीं होता कि कौन कहां मरता है? और किसकी अन्त्येष्टि क्रिया कहाँ होती है। लेकिन आज एक व्यक्ति बापू— के चले जाने पर जो अपार दुख हो रहा है, वह क्यों हो रहा है? इसका क्या कारण है? उन पर 'गोली चली' यह समाचार सुनकर मानों हमारे शरीर पर गोली चली हो, ऐसा असह्य दुख उनके वियोग से हमें क्यों अनुभव हो रहा है? यह एक प्रश्न है जिसका उत्तर हमें यहाँ खोज लेना है।

जीवन-कस्तूरी :

एक बार बरार में कोई धनवान् व्यक्ति एक विशाल मकान बनवा रहा था। उस समय कस्तूरी बेचने वाला एक नेपाली वहां जा पहुँचा। उस धनवान् व्यक्ति ने उससे कस्तूरी का भाव पूछा। नेपाली ने तिरस्कार-भरा उत्तर देते हुए कहा—'तुम दक्षिण के दरिद्र मनुष्य कस्तूरी क्या खरीद सकते हो? पूना जाने पर भी शायद ही माल बिक सकेगा।' यह सुन कर उस धनिक व्यक्ति को बड़ा रोष हुआ और उसने उसी समय नेपाली से कहा—"तेरे पास जितनी कस्तूरी है वह इसी समय यहां तौल कर रख दे और अपने रुपये ले ले। मैं अभी इसे चूने में मिला देता हूँ ताकि उत्तर भारत में जाकर तू यह कह सके कि दक्षिण के लोग तो कस्तूरी की दीवाल बनाते हैं।" सचमुच उस व्यक्ति ने सारी कस्तूरी

खरीद कर चूने में मिलवा दी और उसमें अपने मकान की दीवारें बनवाई। कहते हैं, आज भी उस मकान की दीवारों में कस्तूरी की सुगंधि आती है। ठीक इसी तरह महात्माजी के जीवन-आदर्शों की दीवारों में भी कस्तूरी डाली हुई थी। उसकी सुवास उनके जीवन पर्यन्त तो सबने सेवन की ही, परन्तु उनके अवसान के बाद भी हजारों वर्षों तक उनकी यह सुवास महकती रहेगी। विज्ञानका एक नियम है कि हजारों वर्ष पूर्व निकले हुए तारे की किरण को आज भी हम देख सकते हैं, आज के टूटे हुए तारे की अन्तिम किरण हजारों वर्षों बाद भी देखी जा सकती है। यह सच है कि महात्माजी का जीवन-तारा आज टूट गया है, पर उसकी किरणों का प्रकाश तो हमें हजारों वर्षों तक भी मिलता रहेगा। निष्कर्ष यह कि महात्माजी का जीवन अहिंसा की सुवास और प्रेम का प्रकाश फैलाता था, पर आज उस जीवन-प्रदीप के बुझ-जाने से समस्त संसार में अन्धेरा छा गया है और वह शोक-सागर में निमग्न हो गया है।

महा-मानव बापू :

महात्माजी कोई साधारण मनुष्य नहीं थे। वे महा-मानव—श्रेष्ठ पुरुष थे। अभय, अद्वेष और अखेद ये महापुरुष के तीन लक्षण हैं। इनको हम महात्माजी के जीवन में भली भांति देख सकते हैं। अभय बनना आध्यात्मिकता की नींव है। इसके बिना कोई भी सद्गुण टिक नहीं सकता।

अभय :

सत्य के बिना किसी भी सद्गुण का मूल्य नहीं होता और जो सद्गुण होते हैं वे निर्भयता की वाटिका में ही पुष्प बन कर खिलते हैं। न्याय-निष्ठा, परोपकार, स्वार्थत्याग, आग्रहपूर्वक प्रतिकार करने की हिम्मत और मौका आने पर आत्म-बलिदान तक करने की तैयारी, ये सभी गुण निर्भयता द्वारा ही हृदय में उतरते हैं--खिलते हैं—बढ़ते हैं। निर्भयता-रहित सभी

प्रवृत्तियाँ निर्बल होती हैं। गीता में भी जहाँ दैवी-सम्पत्ति का वर्णन किया गया है, वहाँ निर्भयता को ही सर्व-प्रथम स्थान दिया गया है। आसुरी सम्पत्ति को परास्त करने के लिये जब दैवी सम्पत्ति अपनी व्यूह रचना करती है, तब सेनापति का पद अभय को ही प्राप्त होता है। स्वामी विवेकानंद ने भी कई बार अपने भाषणों में कहा है कि fear is sin—भय पाप है। इतना ही नहीं, भय सब पापो का मूल भी है।

इस प्रकार अनेक गुणों का जनक अभय महापुरुष का प्रथम लक्षण है। वह दो प्रकार का है—एक तरफ तो मनुष्य किसी व्यक्ति या जबरदस्त सत्ता से भी भयभीत न हो, और दूसरी तरफ उससे भी कोई व्यक्ति भयभीत न हो। ऐसा दो तरफा शुद्ध आचरण होने पर ही 'अभय' की सिद्धि मानी जा सकती है।

मृत्युंजय बापू :

महात्माजी के जीवन में अभय इसी रूप मे प्रतिष्ठित था। अमेरिका मे विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर से जब एक पत्रकार ने महात्माजी की विशेषताएँ पूछीं, तब उन्होंने उत्तर देते हुए कहा था कि महात्माजी मे तीन विशेषताएँ हैं। अभय, सत्य और हिसाब की सफाई उनके पास इतनी अधिक है कि वे पाई पाई का भी लेखा रखते हैं। जिस काम के लिये जो रकम प्राप्त हुई होगी उसी काम में वे उसका उपयोग करते हैं। मुझे याद है कि एक बार सौजन्य-मूर्ति स्वामी आनंद ने प्रसंगवश बातचीत मे कहा था कि महात्माजी को एक भाई ने लोकमान्य तिलक का सुन्दर जीवन-चरित्र लिखने वाले को दो हजार रुपये इनाम देने के लिये दिये थे, परन्तु योग्य लेखक नहीं मिलने पर वह रकम आज भी उसी तरह अलग रखी हुई है। उसका किसी दूसरे काम मे उन्होंने उपयोग नहीं किया। यह उनकी हिसाब की सफाई का एक छोटा-सा उदाहरण है जिस पर से उनकी प्रामाणिकता का पूरा पूरा अन्दाज लगाया जा सकता है। उनकी

सत्य की उपासना को तो सब कोई जानते है। सत्य एक तरफ हो और सारी दुनिया एक तरफ हो तो भी वे सारी दुनिया को छोडकर अकेले सत्य के निकट अडिग खड़े रहते थे। बापू की निर्भयता का परिचय देते हुए रवीन्द्रनाथ ने कहा था कि मै तो विश्व-कवि कहा जाता हूँ, फिर भी मेरे सामने कोई मनुष्य छुरी निकाल कर आवे तो मै डर के मारे बालक की तरह भागना शुरू कर दूंगा, लेकिन गांधीजी के समक्ष यदि कोई छुरी लेकर आवे तो वे उसका हसते हुए स्वागत ही नहीं करेंगे बल्कि उसके सामने जाकर खड़े हो जायेंगे। यह है उनकी निर्भयता। उनको किसी व्यक्ति या आपत्ति का भय नहीं था और न मृत्यु का ही भय था। वे मृत्युंजय थे। उनसे कोई भयभीत हो, ऐसा उनका आचरण नहीं था। वे सबको एक समान प्यारे थे। एक छोटे-से बालक से लेकर रक-भिखारी, मूर्ख, पंडित या दुराचारी सब उनसे निर्भयता पूर्वक मिल सकते थे। इस प्रकार उभय रूप मे गांधीजी अभय को धारण किये हुए थे।

अद्वेषी बापू :

महापुरुष का दूसरा लक्षण है अद्वेष। अहिंसा और प्रेम का पहला रूप अद्वेष-अवैर ही बापू की जीवन-सिद्धि का सजीव आदर्श था। गत कुछ महीनों से तो अद्वेष-अहिंसा और अवैर ही उनके उपदेशों का मुख्य अग बन गये थे।

उन्होंने अपनी सारी जिन्दगी लडाई मे ही गुजारी। लड़ने के लिये ही उनका जन्म हुआ था ऐसा भी अगर कहा जाय तो अनुचित नहीं है। फिर भी उन्होंने किसी के साथ वैर नहीं रखा। जिसके साथ वे लड़ते थे उसका भी हित ही चाहते थे। वे एक तरफ तो शत्रु की दानवता के सामने लड़ाई लडते थे, पर दूसरी तरफ उसकी मानवता के साथ भाई-चारा भी बाधते थे। सारी जिन्दगी तक लड़ाई लड़ते हुए भी उनके मन मे कोई दुश्मन नहीं था यही बात उनकी अद्वेष-सिद्धि को सिद्ध कर देती है।

निर्मल-हृदय बापू :

गांधीजी अपने विरोधियों को भी मदद पहुँचाया करते थे। दक्षिण अफ्रीका में जब वे रहते थे तब उनके विरोधियों का एक शिष्ट मंडल जनरल स्मट्स से मिलने गया था। लेकिन उनमें से किसी भी व्यक्ति में इतनी दक्षता या भाषा-ज्ञान नहीं था कि वे अपनी बात को कह कर जनरल स्मट्स को प्रभावित कर सकें। अन्त में उन्होंने इसके लिये महात्माजी से ही प्रार्थना की। अपने बारे में अपने ही शत्रु को विरोधी बातें कहना कौन चाहेगा? लेकिन महात्माजी ने उनके आग्रह को कायम रखते हुए उनकी प्रार्थना स्वीकार की और उन्हें पूरा-पूरा सन्तुष्ट भी किया। इस प्रकार वे द्वेष और वैर को पूरी तरह नष्ट कर चुके थे। वर्ण, जाति, सम्प्रदाय या देश तक ही नहीं, मानव-मात्र पर उनका प्रेम था। उनको देखते ही ऐसा भास होने लगता था मानों प्रेम ही गांधीजी के रूप में अवतरित हुआ हो। उनके अंग-प्रत्यंग से प्रेम का ही झरना झरता रहता था। उनकी वाणी का श्रवण करना प्रेमामृत का पान करने की तरह लगता था। उन्होंने अपनी जिन्दगी में जो जो महान् कार्य किये उनके मूल में मानव-प्रेम ही दिखाई पड़ता है। जब जब वे मानव के प्रति किसी की द्वेष या वैर वृत्ति को देखते थे तब तब उनका हृदय बड़ा दुखित हो उठता था, जिसकी शांति के लिये उन्हें उपवास की शरण लेनी पड़ती थी। सन १८३० में जब वे यरवडा जेल में थे, उस समय वहां के जेलर मिस्टर क्विन बापू से गुजराती पढ़ने के लिये आया करते थे। बापू उन्हें बालपोथी पढ़ाते थे। लेकिन जब वे एक दिन नहीं आये तो बापू ने दूसरे दिन उनकी खबर करने के लिये काका साहब को उनके पास भेजा। भोजन कर लेने पर काका साहब ने गांधीजी से कहा कि मि. क्विन कल एक आदमी को फांसी देने के काम में रुक गये थे अतः पढ़ने नहीं आ सके थे। बस, फांसी देने का नाम सुनते ही गांधीजी तो अस्वस्थ हो गये। उनका चेहरा बदल गया। उन्होंने

कहा—काका, खाया हुआ अनाज अभी पेट से बाहिर निकल जायगा। उस मनुष्य का फांसी का चित्र सामने खड़ा हो जाने से गांधीजी इतने अस्वस्थ हो गये कि उससे काका साहब भी घबरा गये। एक मनुष्य की हत्या में भी जब वे इतने दुखित हुए तो सैकड़ों मनुष्यों के खून से उनकी आत्मा कितनी दुखित होती रही होगी? इस बात का सहज ही अन्दाज लगाया जा सकता है। हत्या ही नहीं, पर मानव-हृदय में रहे हुए द्वेष-भाव, वैर-भाव भी उनको शल्य की तरह चुभते थे। वे मानव-हृदय में प्रेम की निर्मल-ज्योति जगाने के लिये सदा तत्पर रहा करते थे और उनका यह दृढ़ विश्वास था कि समस्त मानव-समाज में यह ज्योति जगाई जा सकती है।

प्रज्वलित दीप-स्तम्भ :

अवैर और अहिंसा के प्रतीक बापू, अखंड प्रज्वलित दीप-स्तम्भ की तरह थे। आखिरी कुछ महीने तो उनके भयंकर परिस्थितियों में गुजरे—मानों प्रलयकाल हो, लेकिन ऐसे समय में भी वे अपने आदर्श को, ध्येय को कूटस्थ की तरह पकड़े रहे थे। और उनकी धीमी पर सुदृढ़ आवाज सत्य तथा पुरुषार्थ का दर्शन कराती हुई लोगों को बराबर ऊपर से सुनाई दे रही थी। चारों तरफ दीपक बुझ रहे थे, पर यह उज्ज्वल दीपस्तंभ अखंड रूप में जल रहा था और आसपास के हिंसा तथा द्वेष के तिमिर में अपनी प्रकाश किरण फेंक रहा था। इस जीती जागती प्राणवान आत्मा को न तो कोई अनवस्था घेर सकी और न कोई घटना ही उसको विकृत कर सकी थी। ता० २७-१-४८ के प्रार्थना-प्रवचन के ये शब्द इसी की साक्षी दे रहे हैं। वे कहते हैं—'वैर-वृत्ति की छुपी इच्छा भी मत रखो।'......दरगाह को कौमी तूफानों से जो नुकसान पहुँचा उसके लिये गांधीजीने दुख व्यक्त किया था। उन्होंने कहा था कि 'पाकिस्तान में भी ऐसा ही हुआ था, कहना कोई ठीक जवाब नहीं है।

ऐसी वैर-वृत्ति को अटका न सके, क्या इस हद तक हमारा पतन हो चुका है। बुराई की बुराई से तुलना उचित नहीं कहा जा सकता।'

अनासक्ति के उपासक :

महापुरुष का तीसरा लक्षण अखेद है। बापू किसी भी प्रसग मे खेद नहीं करते थे। वे बड़े विकट प्रसंग मे भी खुश रहते थे। सन् १९४४ मे वे जिन्ना से मुलाकात करने के लिये बम्बई आये थे। उस समय हमारा भी मिलना बापू से होता था। उस समय मुलाकात के निष्फल होने पर भी बापू के चेहरे पर लेशमात्र भी खेद नजर नही आता था। मानों कुछ हुआ ही न हो, यों पूर्ण प्रसन्न-चित्त से वे बातें किया करते थे। ऐसे तो अनेकों प्रसगों से उनका जीवन भरा हुआ था, फिर भी वे कभी अप्रसन्न नही रहे थे। अनासक्ति के वे उपासक थे और इसीसे उन्हे सफलता या असफलता स्पर्श तक न कर सकी थी।

सच्चा स्मारक :

इस प्रकार अभय, अद्वेष और अखेद गुणों द्वारा गाधीजी महानता के पथिक बने थे। आज उनके इन्हीं गुणों की सुवास चारों तरफ फैल रही है। और यह सुवास ही करोडों व्यक्तियों के नेत्रों मे से अश्रु-धारा बहा रही है। उनका पवित्र जीवन उनके पास जानेवालो मे भी पवित्रता भरता था। कई वर्षों पूर्व बम्बई के टाऊन हॉल में एक विशाल सभा के समक्ष भाषण देते हुए अफ्रीका से लौटकर गोखले ने कहा था—'गाधीजी के सान्निध्य मे रहने पर सुन्दर मदिर या मस्जिद में खडे हों ऐसे भव्य विचार आते हैं। उनके उच्च जीवन को अपने सामने रख कर उनके पथ पर हम सब चले, यही उनका सच्चा स्मारक है।

ता० १ : २ : ४८ } घाटकोपर की शोक-सभा मे महात्माजी को दी गई अंजलि

: १० :

यंत्र-युग और गृहोद्योग

यन्त्रों से ह्रास :

आज का युग यंत्र-युग के नाम से प्रसिद्ध है। इस आखिरी शताब्दी में यंत्रों ने जो शीघ्रगामी प्रगति की है, वैसी पहले कभी नहीं हुई थी। इस प्रगति का सर्वोच्च शिखर 'अणुबम' है, लेकिन इस प्रगतिगामी युग के सभी यंत्र क्षणिक सुख देने के सिवा अन्य सब प्रकार से हानि-प्रद ही सिद्ध हुए हैं। यंत्रों की प्रबलता में मानव-जाति यंत्रवत् बनती जा रही है। वह अपने हिताहित का विचार भी नहीं कर सकती। यंत्रों से आर्थिक, शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक यों सर्वतोमुखी ह्रास ही होता है।

यन्त्र और चरखा :

क्रिया के समक्ष प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है। रावण के सामने राम, दानव के सामने देव, कंस के समक्ष कृष्ण, हिंसा के समक्ष अहिंसा और पाप के सामने पुण्य जैसे पैदा होते हैं, वैसे ही यंत्र-प्राबल्य के सामने गांधीविचार पैदा हुआ। गांधीजी ने यंत्रों के सामने चरखे की—गृहोद्योग की प्रतिष्ठा की। यंत्रों से होने वाले सर्वतोमुखी ह्रास को गृहोद्योग द्वारा रोका जा सकता है।

आशंका गलत है :

कई लोगों का खयाल है कि यंत्र-बाहुल्य के इस जमाने में गृहोद्योग क्या कर सकेगा? दुनिया की बड़ी-बड़ी मिलों के सामने अगर थोड़े-से मनुष्य चरखे चलाने लग जायँ तो उससे क्या होने वाला है? लेकिन ऐसा सोचना ठीक नहीं है। उनका यह प्रश्न तो ऐसा है कि अमावस की काली

रात में किसी को बाहिर निकलने का काम पड़े और वह उस समय यह कहे कि विश्व के गहनतम अंधकार को मेरा दीपक कैसे दूर कर सकेगा? ऐसा समझ कर जैसे उसका अंधेरे में भटकना मूर्खतापूर्ण है, वैसे ही ऊपर का प्रश्न भी अज्ञानतापूर्ण है। यन्त्रवाद के इस भीषण समय में गृह-उद्योग जैसी छोटी-सी प्रवृत्ति भी अंधेरे में दीपक की तरह है। 'दीपक से दीपक जलता है' इस न्याय से अनेक दीपक प्रज्ज्वलित होकर यन्त्रवाद का अंधकार दूर करें, यह आशा हमें रखनी चाहिये।

यन्त्र-उद्योग से बेकारी बढ़ती है :

धार्मिक दृष्टि से यन्त्र-उद्योग और गृह-उद्योग का निरीक्षण करने पर प्रतीत होता है कि यंत्र-उद्योग महारम्भी यानी महान हिंसक है, जब कि गृह उद्योग अल्पारम्भी है। उदाहरण के तौर पर हम कपड़े को ही लें—मिल का कपड़ा और खादी। मिल के कपड़े में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक हिंसा है। कपड़े को मुलायम और चमकीला बनाने के लिये उस पर पशुओं की चरबी लगाई जाती है। इसके सिवा मिलों के कारण घर में चरखा चलाने वाले और हाथ से कपड़ा बुनने वाले बहुत से बेकार हो जाते हैं। गृह-उद्योग में लगभग १०० मनुष्य जितना काम करते हैं उतना मिल में एक आदमी कर लेता है। इससे ९९ आदमी बेकार बन जाते हैं। और उनकी आजीविका का सहारा टूट जाता है। वृत्ति-छेद हो जाता है, जिसको हिन्दू-शास्त्रों में वध जैसा पाप बताया गया है।

यन्त्र भूत हैं :

यंत्र भूत के समान है। जैसे कोई किसान भूतकी साधना करे और फिर भूत कहे कि मुझे काम दो नहीं तो मैं तुम्हें खा जाऊंगा, वैसे यंत्रों को भी काम नहीं दिया जाय तो वे मालिक को ही खा जाते हैं। यानी तब यन्त्र -रखना शक्ति से बाहर की बात हो जाती है। जैसे जैसे यन्त्रों में अधिक

काम लिया जाता है वैसे उत्पादन भी बढ़ता जाता है। उत्पादन के साथ विकास का सवाल पैदा हो जाता है। इसके लिये युद्ध की नौबत आ जाती है। अपना माल सब देशों में बेचा जाय इसके लिये ये युद्ध होते हैं। बाजारों पर कब्जा करना, इसके लिये युद्ध तक की तैयारी रखना, इस तरह यन्त्र और युद्ध की सांकल परम्परा जुड़ी हुई है। इससे यन्त्र या यंत्र की वस्तु का उपयोग करने वाला हर एक मनुष्य युद्ध की महा-मानव-हिंसा का भागीदार बनता है।

यंत्रोद्योग में क्रूरता है:

प्राचीन समय में रोमन के बादशाह अपनी शौक के खातिर छोटे छोटे बालकों के हाथ काट कर कुंडों में रखा करते थे और अपने सामने जीवित मनुष्यों के कपड़ों और शरीर पर राल लगा कर जला दिया करते थे। ऐसे मनुष्यों को हम क्रूर कहते हैं। परन्तु जो मनुष्य आज चमक और कोमलता के लिये ही मिल-वस्त्र और हिंसक-चमड़े की वस्तुएँ उपयोग में लाते हैं उनमें क्या ऐसी क्रूरता का अंश नहीं है? ता० १४-११-४८ के 'हरिजन बंधु' में श्री किशोरलाल मशरूवाला ने लिखा था कि नरम चमड़े के लिये गर्भवती गायों का कत्ल किया जाता है और फिर उसके गर्भ के बछड़े का चमड़ा निकाल कर उसकी वस्तुएँ बनाई जाती हैं। इस धंधे में मुनाफा बहुत मिलता है। ऐसी वस्तुएँ काम में लाना कितनी घोर हिंसा और क्रूरता है! अहिंसा प्रेमियों को तो इनका स्पर्श तक नहीं करना चाहिये। अहिंसक-चमड़े की गृह-उद्योग की वस्तुओं का उपयोग ही दया-धर्मियों का बाह्य चिह्न है।

आज समाज में आर्थिक स्थिति विषमता के उच्च शिखर पर पहुँच गई है। उसको सम करने के लिये गृहोद्योग ही एक मात्र उपाय है। यन्त्रों द्वारा नल के पानी की तरह एक ही जगह से बड़ी धारा से अर्थ-धन बहाया

जाता है, जबकि गृहोद्योग द्वारा झरमर-झरमर बरसात की तरह सारे समाज का पोषण होता है। आज धन का विभाजन करने के लिये अनेक वाद प्रचलित हुए हैं, परन्तु यथार्थ मे धन का योग्य वितरण करने वाला यदि कोई सच्चा और सरस मार्ग है तो वह महात्माजी द्वारा बताया गया गृहोद्योग ही है। यंत्रों द्वारा मुट्ठी भर मानव ही करोडपति बनते हैं और करोड़ों भूखो मरते हैं, जब कि गृहोद्योग द्वारा करोड़ों मनुष्यों को मुट्ठी भर अनाज पहुँचाया जाता है। इसीलिये महात्माजी ने चरखे को अन्नदाता की उपमा दी थी।

मिलों मे काम करने वाले मजदूरों के शरीर अतिशय श्रम से दुर्बल हो जाते हैं। कइयों को क्षय और दमा जैसे रोग हो जाते है। घर मे बैठकर काम करने वाले स्त्री-पुरुषों को जब मिल मे जाकर काम करना पडता है तब नैतिक पतन की भी शुरुआत होने लग जाती है। अमेरिका जैसे देशों मे जहा यंत्र हवा की तरह फैल रहे हैं, वहां के एक अनुभवी श्री कुमारप्पाजी कहते है कि अमेरिका की बहुत-सी प्रायमरी स्कूलों मे विद्यार्थियों के दिमाग प्राथमिक शिक्षण भी ग्रहण नहीं कर सकते हैं। इसका कारण बताते हुए उन्होंने लिखा है कि यंत्रों की अधिकता से बुद्धि भी जड बन जाती है। इस प्रकार शारीरिक, नैतिक और बौद्धिक दृष्टि से भी यंत्र हानिकर ही सिद्ध हुए हैं।

यन्त्र अशान्ति फैलाते हैं :

यंत्रो ने सुख-सामग्री मे तो बहुत वृद्धि की है, पर हृदय की सच्ची शांति को लूट लिया है। मनुष्य घर मे हो या बाहर, पर इतनी अधिक खटखट होती है कि मनुष्य अपने अन्तर्नाद को नहीं सुन सकता। बाहर निकले कि मोटर-सायकल की फट-फट, रेल की भकभक, विमान की घरघर और मिलों की घर्र-घर्र आवाज शुरू रहती है। और घर मे आये

तो पंखे की सरसर, टाइप राईटर की किलक-किलक प्राईमस की सू सू और रेडियो की खरखर चालू ही रहती है। ऐसा अशान्त वातावरण मनुष्य के ज्ञान तन्तुओं को निर्बल बना देता है। चित्तवृत्ति एकाग्र नहीं हो सकती। ऐसी स्थिति मे शांति कहाँ से प्राप्त हो! गृह-उद्योग ही इस अशान्ति से बचा सकता है।

दोनों में अन्तर :

गृहोद्योग घर को सुखी बनाता है और यन्त्रोद्योग इस सुख को बरबाद कर देता है। गृहोद्योग से चरित्र निर्मल बनता है, और मिलों मे यह धूल मे मिल जाता है। गृहोद्योग से संगीत का सुस्वर निकलता है और मिलों से कर्कश-कटु ध्वनि होती है। गृहोद्योग पत्नी की तरह अपने घर मे ही पोषण करनेवाला है और मिल वेश्या की तरह अपने यहां बुला कर उसको चूस लेता है और फिर दुतकार देता है। गृहोद्योग का काम करते समय मन हिलोरें मारता है और मिलों मे काम करते समय मन चक्कर खाता है। गृहोद्योग देवी है और मिल पूतना-राक्षसी है। गृहोद्योग मे लगाया गया पैसा घी-दूध में परिवर्तित हो जाता है और मिल मे लगाया हुआ पैसा तलवार-बदूक और बम के रूप मे परिणत हो जाता है। मिलों, कारखानों और उनमे काम करने वालों को सदा बम से भय बना रहता है, और चरखा या गृह-उद्योग हमसे निर्भय बना रहता है। सकट के समय मे जब कि सबका लाभ छूट जाता है तब चरखा या गृह-उद्योग ही सबका सहायक बनता है। आपको याद होगा कि गत युद्ध मे जब कि अणुबम से जापान का नाश हुआ था और समस्त कल-कारखाने नष्ट हो गये थे, तब वहां की मां-बेटियों की लज्जा चरखे ने ही रखी थी।

यंत्रोद्योग अनार्य है :

हम गृहोद्योग को आर्य-धंधा कह सकते हैं और यन्त्रोद्योग को अनार्य। हमारे गुरुदेव इस संबंध मे खूब बारीकी से विचारते है। वे कहते है कि जितने परिमाण मे यंत्र या यंत्र की बनाई हुई वस्तुओ का उपयोग होता है उतने ही परिमाण में मनुष्य अनार्य बनता जाता है। एक भाई ने जब उनसे अपनी मोटर खरीदने की बात कही तो उन्होंने कहा कि 'इस महारंभी साधन से मोटर की तीव्र गति की तरह ही मनुष्य अनार्यता के फंदे में फंसता चला जाता है।' उनके दर्शनार्थ यदि कोई भाई ऐसे साधनों मे बैठ कर आता है तो यह भी उनको प्रिय नही लगता। इस तरह वे यंत्रोद्योग को अनार्यता की तरफ ले जाने वाला साधन समझते है।

विवेक जाग्रति :

विवेक बिना धर्म नही हो सकता। पहली बात तो यह है कि मनुष्य को अपनी आवश्यकताएँ कम करनी चाहिये। परन्तु जो आवश्यकताएँ जीवन के लिये अनिवार्य हैं उनको ग्रहण करते समय भी विवेक को जाग्रत रख कर उनके पीछे अल्प या महारंभ तो नही होता है इसका विचार करना चाहिये। यदि किसी दयाधर्मी को कोई यह कहे कि इस कीड़ी को मारोगे तो मैं तुम्हे पाँच लाख रुपया दूँगा, तो क्या वह दयाधर्मी यह काम करेगा ? नहीं, वह यह काम हरगिज नहीं करेगा और पाँच लाख रुपया छोड़ देगा। परन्तु वही दयाधर्मी यदि मौज शौक के लिये या सस्ता मिलने की दृष्टि से गृहोद्योग की वस्तुओं का त्याग कर यंत्र की वस्तुएँ उपयोग मे लाता होगा तो वह दयाधर्मी किस हद तक दयावान है, इसका आप स्वयं ही विचार कर लीजियेगा। उपवास आदि तप करने वाला और धार्मिक क्रियाएँ करने वाला पुरुष यदि वस्तुएँ कुछ महंगी है या देखने मे अच्छी नहीं है, इसके लिये ही गृहोद्योग को उत्तेजन नहीं दे तो यह उसके लिये कितना विचारणीय सवाल हो जाता है?

कुछ विचारणीय प्रश्न :

गांव में कसाई खाना शुरू हो तो आप सब उसका कितना विरोध करेंगे ? परन्तु यदि गांव मे मिल शुरू होती है तो क्या आप उसके खिलाफ कुछ करेंगे ? जैसे कसाई के लिये समाज में स्थान या प्रतिष्ठा नहीं है, वैसे ही उद्योगपति भी प्रतिष्ठा के अधिकारी कैसे माने जा सकते है ? खुले आम बाजार मे यदि कोई मुसलमान गोवध करे तो सारे बाजार मे हड़ताल हो जायगी, परन्तु जब उसी बाजार में नया कारखाना खुलता हो तो उस समय किसी को कुछ भी विचार क्यो नहीं आता ? मुझे बड़ा विस्मय होता है कि अब तक इन्सान इस सत्य को क्यों नहीं समझ पाया है ?

हम निश्चय करें :

आज के गांधी जयंती के पवित्र दिवस पर और गृहोद्योग प्रदर्शन के इस उद्घाटन के समय हम सबको यह निर्णय कर लेना चाहिये कि जहाँ तक गृहोद्योग की अल्पहिंसक वस्तुएँ मिलती हों वहां तक दूसरी कोई यंत्र निर्मित वस्तुएँ न खरीदेंगे। यह कलयुग है। कल यानी मशीन या यंत्र का युग। परन्तु गृह-उद्योग इस कलयुग को सतयुग यानी गांधीयुग मे परिवर्तित कर सकेगा।

गृहोद्योग तप है :

गृहउद्योग की अल्पारंभी वस्तुओं को प्राप्त करने मे यदि थोड़ी कठिनाई उठानी पड़े और फिरना भी पड़े तो उस समय यह समझना चाहिये कि यह तो धर्म-यात्रा है। अधिक मंहगी पडती हो तो यह समझ लेना चाहिये कि बढ़ी हुई कीमत हम अपने देश वासियों को दान दे रहे हैं। गृहोद्योग की वस्तुएँ

यदि कोमल न हों तो यह समझ लेना चाहिये कि कोमलता का त्याग भी तप ही है। सारांश यह कि चाहे जिस तरह भी अहिंसा प्रेमियों को यंत्रोद्योग की महारंभी वस्तुओं का त्याग अवश्य करना चाहिये।

घाटकोपर }
१९५० }

[गृहोद्योग प्रदर्शन के समय
दिया गया प्रवचन]

: ११ :

महात्मा गांधी और जिन्ना

बापू और जिन्ना में अन्तर :

मानव की जिन्दगी क्षणिक होती है, पर उसका सूक्ष्म जीवन हजारों वर्षों तक जीवित रहता है। राम और रावण हजारों वर्षों पूर्व हुए थे और उनका स्थूल जीवन नष्ट हो गया, लेकिन आज भी उनका सूक्ष्म जीवन जिन्दा है। राम के जीवन की मधुरता और रावण के जीवन की कटुता आज भी दुनिया में फैली हुई है। इसी तरह कृष्ण और कंस की याद भी अभी तक बनी हुई है। यही बात हमारे राष्ट्रपिता बापू और देश का विभाजन करने वाले जिन्ना का देहावसान बताता है! दोनों ने अपना स्थूल देह छोड दिया है, लेकिन समझना यह है कि जब कि महात्माजी का वियोग-समाचार सुनकर पत्थर-हृदय मानव भी पिघल पड़े थे, लोगों की आँखों से अश्रुधारा बह चली थी तब उनके प्रति स्पर्धी जिन्ना के अवसान के समय ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था। इसका क्या कारण था? जिन्ना और महात्माजी के जीवन में आकाश पाताल का अन्तर था! एक ऊर्ध्व-गामी आकाश का जीव था तो दूसरा पातालगामी। एक ने अपने तुच्छ स्वार्थ के खातिर चालीस करोड़ मानवों का भोग लिया था, तो दूसरे ने चालीस करोड़ मानवों के लिये अपना भोग दिया था—अपनी जिन्दगी कुर्बान की थी। यही अन्तर दोनो के जीवन मे था। इसीलिये जिन्ना के अवसान से लोगों को कोई दुख नही हुआ।

महापुरुषों की मैत्री भावना :

मानव का जीवन क्षणिक है, अतः हर मनुष्य को मरना तो है ही। भले ही संगम की जीए या महावीर की तरह, लेकिन मौत तो निश्चित ही है। तब फिर हम मर कर भी क्यों नहीं अपना ऐसा सूक्ष्म जीवन यहाँ छोड़

जायँ कि जो वर्षों तक इस पृथ्वी पर अपनी सुगन्ध फैलाता रहे ? महापुरुषों के जीवन-काल को हजारों वर्ष व्यतीत हो गये हैं, फिर भी उनकी सुवास ताजी बनी हुई है। ऐसा उनमें क्या था ? क्या हम भी वैसा नहीं कर सकते ? महापुरुषों के जीवन में मैत्री-भावना भरी रहती है। करुणा और मैत्री के मनोहर फूल उनके हृदय में खिले हुए होते हैं। गांधीजी के जीवन में भी ऐसी ही उत्तम भावना भरी थी, जिससे आज भी उनका जीवन हमें अत्यन्त प्रिय लग रहा है।

बापू की मैत्री-भावना :

मैत्री-भावना जैन-धर्म का मूल है। पृथ्वीकाय से लेकर पंचेन्द्रिय प्राणियों तक यह भावना रहती है। 'मित्ती मे सव्वभूएसु' से यही साबित होता है। महात्माजी के जीवन मे यही भावना थी। वे जिसमे लड़ते थे उससे भी बैर-भाव नहीं रखते थे। उनके जीवन का आफ्रिका का एक प्रसंग है, तब वहा उनके कई दुश्मन भी हो गये थे, जो इनमे चिढ़े हुए थे। एक बार वे लोग, जो कि गाधीजी के दुश्मन थे, जनरल स्मट्स से उनके खिलाफ कुछ कहना चाहते थे। लेकिन क्या कहें, जिसस कि जनरल स्मट्स पर कुछ प्रभाव पड़ सके, यह उनमें से किसी को भी नहीं सूझ रहा था। अन्त में वे सब गाधीजी के पास गये, तो उन्होंने उन्हें जो कहना चाहिये जिससे कि स्मट्स पर कुछ प्रभाव पड़ सके, बताया और बड़े प्रेम से बिदा किया। भला, मैत्री-भावना का इससे सुन्दर उदाहरण और कौनसा हो सकता है ? अपने शत्रु को भी ऐसी सलाह देना क्या मैत्री-भावना नहीं है ?

जिन्ना का जीवन :

दूसरी तरफ अगर आप जिन्ना के जीवन को देखेंगे तो वहाँ आपको यह भावना नहीं दिखाई देगी, और तो क्या वे अपने भाई के प्रति भी

प्रेम नहीं रखते थे। उनका सगा भाई बम्बई की गोकुलदास तेजपाल (जी. टी.) हॉस्पिटल में मर गया, पर उसकी खबर तक जिन्ना ने नहीं ली। भला, जिस मानव में अपने भाई के प्रति भी अनुराग न हो उसके हृदय में क्या कभी मैत्री-भावना संभव हो सकती है? उसे तो अपने तुच्छ स्वार्थ की मैत्री थी जिसके लिये वह जीया और अन्त में उसी के पीछे मर गया। आज उसका ऐसा ही अपवित्र जीवन शेष रह गया है। उसके जीवन से आज हमें यही शिक्षा लेनी है कि हम भी कहीं उसकी तरह अपना विषैला जीवन यहाँ नहीं बिता जायँ, परन्तु मानव हित के लिये न्यौछावर हो जायँ। जैसा कि महात्माजी ने अपने जीवन से हमें बता दिया।

मैत्री का अर्थ.

गांधीजी के जीवन में मैत्री-भावना कूट-कूट कर भरी थी। मैत्री का मतलब यही है कि दूसरे के प्रति भी अपने जैसी भावना रखना। जैसे मानव अपने लिये सुख चाहता है वैसे ही वह दूसरे के प्रति भी सुख की कामना करे यही मैत्री भावना का अर्थ है। यही भावना महापुरुषों के जीवन में भरी रहती है।

प्रमोद भावना :

महापुरुषों के जीवन में दूसरी जो वस्तु होती है वह है प्रमोद भावना। दूसरे गुणी मनुष्यों के गुणों को देख कर प्रसन्न होना प्रमोद भाव है। सन् '४४ में जब मुझे गांधीजी से मिलने का मौका मिला था, तब प्रसंगवश जिन्ना की बात भी चल पड़ी थी। महात्माजी ने जिन्ना के विषय में कहा, जहाँ उसमें कई अवगुण हैं, वहाँ उसमें कई सद्गुण भी हैं। ऐसी भावना ही प्रमोद भावना है। महात्माजी में यह थी, पर जिन्ना में यह भावना भी कहाँ थी? दोनों के जीवन की

तुलना यदि कोई करना चाहे तो वह इन आन्तरिक सद्गुणों को लेकर ही की जा सकती है। मानव में जब मैत्री भावना आ जाती है तब वह मानव को ही नहीं, पशुओं को भी अपने वश मे कर लेता है। भगवान महावीर के समवसरण मे बकरी और सिंह भी साथ साथ बैठते थे। मैत्री भावना की कैसी परमोत्कृष्ट स्थिति थी वह ? ऐसी मैत्री-भावना महापुरुषों के जीवन में रहती है जो युगों तक सुगंध देती रहती है। महात्माजी के जीवन में इसकी सुवास थी, पर जिन्ना के जीवन मे यह नहीं थी। वह मानव-समाज का शत्रु था। वह अपना दुर्गन्धित जीवन छोड़ कर गया है जिसकी दुर्गंध सैकड़ों वर्षों तक वातावरण को कलुषित करती रहेगी। अतः हमें भी आज यह निश्चय करना चाहिये कि हम हमारा जीवन दुर्गन्धित नहीं, सुवासित बनावें और इसका प्रयत्न करे। अगर हम इन शुभ भावनाओं को अपने जीवन में स्थान देकर विकसित करेंगे तो हमारा सूक्ष्म जीवन अपने लिये तो शुभ होगा ही, पर वह दुनिया के लिये भी हितकारी होगा। युगों तक उससे जो सुवास निकलेगी वह सारी दुनिया के पापों को धोती रहेगी। ऐसे शुभ जीवन से ही हम इहलोक और परलोक को सुधार सकेंगे।

[जिन्ना के अवसान पर दिया गया एक प्रवचन]

हमारे बालोपयोगी श्रेष्ठ प्रकाशन

'प्यारे राजा बेटा' पर लोकमत

"...दोनों पुस्तकें अत्यंत सरल भाषा में एक बालक के मानस व हृदय को उन्नत करने के लिए प्यारे राजा बेटे सम्बोधन के साथ एक पिता के प्यार से लिखी गई हैं, इस कारण यह पुस्तक सभी बालकों के लिए ही नहीं, सब धर्मों व देशों के महापुरुषों में दिलचस्पी रखने वाले पाठकों के लिए भी पठनीय बन गई हैं।" —लोकमत (दैनिक) नागपुर

"...नरश्रेष्ठांच्या या अमोल चारित्र-कथांच्या वाचनानें मुलांचा दृष्टिकोन व्यापक होईल च परन्तु त्याहि पेक्षा या संग्रहांत जी सर्वधर्म समन्वय राखण्याची भावना जाग्रत ठेविली गेली आहे त्यानें उत्कृष्ट मार्ग दर्शन होण्या सारखे आहे। हिन्दी जाणणाऱ्या प्रत्येक मुलानें हे दोन्ही संग्रह एकदा नव्हे, अनेकदा वाचावे इतके ते आकर्षक व चटकदार आहेत।" —लोकसत्ता (मराठी दैनिक) बम्बई

"मिडिलस्कूलों में यह पुस्तक पाठ्यक्रम मे रखी जाने योग्य है।"

—प्रवाह (मासिक) अकोला

"सुरुचि-पूर्ण बाल-साहित्य के यथेष्ट उत्पादन में प्रस्तुत पत्राकार कहानियाँ वस्तुतः मार्ग प्रदर्शन कर रही है।"

—सम्मेलन पत्रिका (द्वैमासिक) प्रयाग

"They are such as to catch the immediate attention of children and impress on them those noble qualities which go in the making of a great man. History, geography and ethics are all fused into an absorbing narrative and the result is as interesting as it is elevating. Hindi-knowing children are sure to welcome those two books very warmly."

—**Bharat Jyoti** (Sunday Edition)

"इसमें सन्देह नहीं कि ये पुस्तकें रोचक भी हैं और प्रेरणादायक भी। सम्पूर्ण संकीर्णताओं से ऊपर उठाने के लिए छपाई आदि सन्तोषजनक है और मूल्य भी अनुचित या बढ़ाकर नहीं रखा गया है।"

—प्रताप (दैनिक) कानपुर

"त्या (गोष्टी) सोप्या हिन्दी मध्ये सांगितल्या असल्याने हिन्दी भाषा आणि पुराण व इतिहास यांचा सुन्दर छाप लहान मुलाच्या मनावर बसतो. शाळातून लावण्यालायक हे दोनहि भाग आहेत."

—सकाळ (रविवार) पूना

"इसमें सन्देह नहीं कि हमारे महापुरुष हमारे जीवन से दूर जा पड़े हैं। लोगों में उनके अस्तित्व पर भी अविश्वास-सा पैदा हो गया है। ऐसे वातावरण में बालकों पर प्रस्तुत पुस्तकों का बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ेगा। भावना की वृद्धि से बालकों की नैतिकता भी प्रभावित होगी।......कथानक आदर्श प्रधान हैं। पुस्तकें सर्वथा निर्दोष हैं।"

— प्रदीप (दैनिक) पटना

'Pyare Raja Beta' is a collection of bigrophical sketches of fifty great men of all creeds and nationalities. These publications should prove popular with boys and girls of tender age. They are written in simple language. Some parables included here emphasize moral values in an interesting manner." —**Times of India**

"Mr. Ranka, writing from behind prison bars, has poured his heart into every line of the letter and it is in that affection that the appeal of his stories lies. The choice is wide enough and is intended to give the boys a liberal education. ..Parents who wish to present their children with useful literature on birthdays will find these books handy. —The HITAVADA, NAGPUR

लेखक — सम्पादक

रिषभदास रांका — **जमनालाल जैन**, साहित्य-रत्न

आकर्षक मुख पृष्ठ। पृष्ठ संख्या पहले भाग की ८९, दूसरे भाग की ९६। पुस्तकें कई स्थानों पर पाठ्यक्रम में रखी गई हैं। अनेक विद्वानों तथा नेताओं द्वारा प्रशंसित। दूसरा संस्करण भी हाथोंहाथ बिक रहा है।

मूल्य प्रत्येक भाग का दस आने।

भारत जैन महामण्डल, वर्धा

श्री भारत जैन महामण्डल
का मासिक मुखपत्र

जैन जगत

सम्पादक :

रिषभदास रांका

जमनालाल जैन, साहित्य-रत्न

राष्ट्रीय दृष्टि और सुलझे विचारों का, सर्वोदय-तीर्थ का प्रतिनिधि चेतना-शील पत्र

वार्षिक शुल्क : तीन रुपया

जैन जगत कार्यालय,
वर्धा (म० प्र०)

★

हमारे प्रकाशन यहाँ मिल सकते हैं :

* भारत जैन महामण्डल c/o अमर सिल्क मैन्यु० कं०, २०, गोडाउन स्ट्रीट मद्रास १.
* भारत जैन महामण्डल पन्ना भुवन, भुसावल
* पुखराज बोरा c/o सूरजमल हस्तीमल, तुकोजीराव क्लॉथ मार्केट, इन्दौर
* फूलचंद हरीचंद दोशी, जैन गुरुकुल, पालीताणा (सौराष्ट्र)
* ताराचंद बड़जाते, एडवर्ड रोड, रायपुर ।
* ईश्वरलाल सोगाणी जौहरी बाजार, जयपुर ।